महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय

पुरातत्त्व उपविभाग प्रदर्शिका

487

रायपुर

१९६० ईस्वी : १८८१ शक

708.9

पुरातत्व उपविभाग प्रदर्शिका

राजकीय संग्रहालय, लखनऊ
क्रमसंख्या 487
प्राप्ति तिथि 13.5.60
विभाग ....
श्रेणी ....
...SEUM, LUCKNOW

चित्रफलक एक

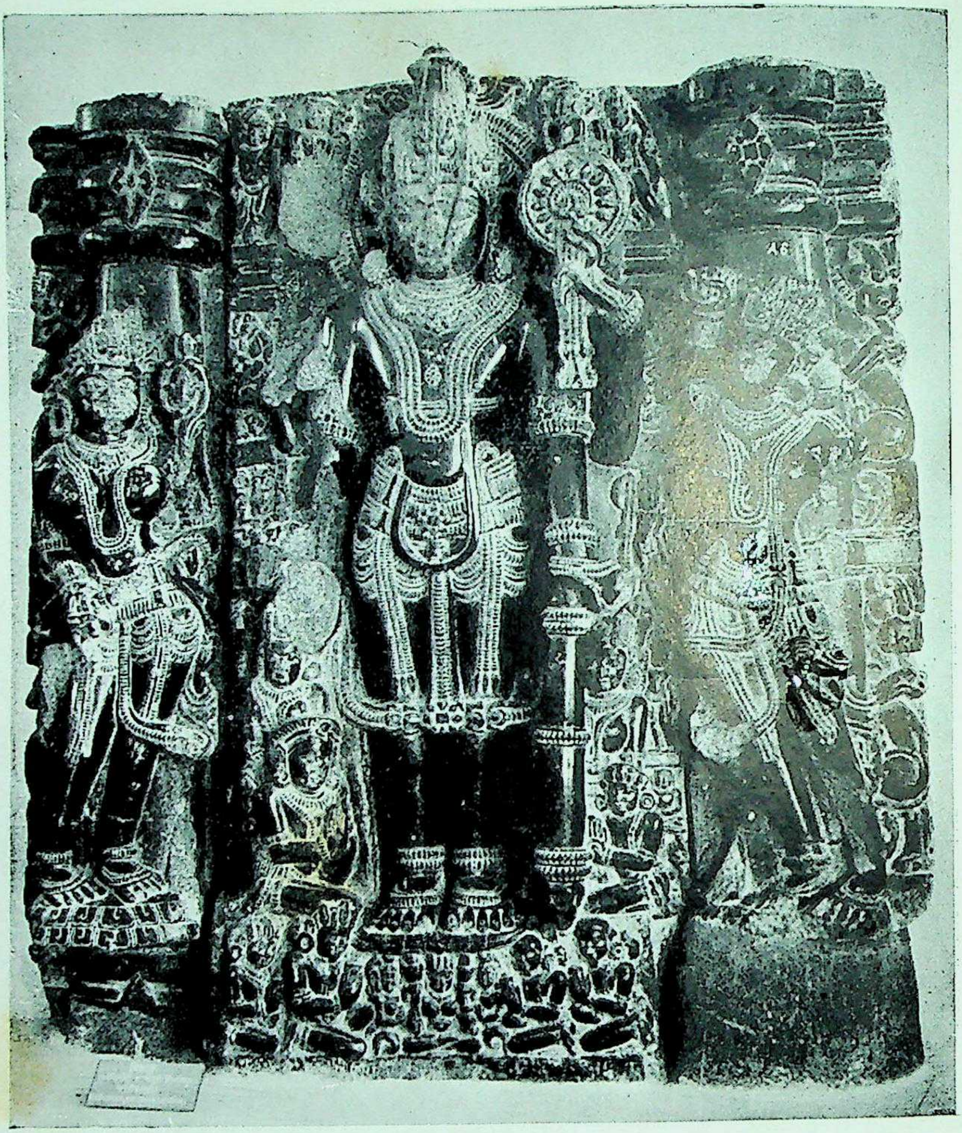

विष्णु; १२वीं शती ईस्वी; रतनपुर, जिला बिलासपुर

महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय

पुरातत्त्व उपविभाग प्रदर्शिका

बालचन्द्र जैन

एम० ए० साहित्यशास्त्री

सहायक संग्रहाध्यक्ष

क्र० संख्या 487
प्राप्ति तिथि 13.5.60
विभाग ....
श्रेणी ....
STATE MUSEUM, LUCKNOW.

रायपुर

१९६० ईस्वी : १८८१ शक

प्रकाशक—
सहायक संग्रहाध्यक्ष,
महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय,
रायपुर, मध्यप्रदेश ।

भारत शासन की वित्तीय सहायता से
सहायक संग्रहाध्यक्ष द्वारा संकलित और प्रकाशित

मुख्य छायाचित्रकार—
विरदी स्टूडियो रायपुर ।

ब्लाक निर्माता और मुद्रक—
सिंघई मौजीलाल एण्ड सन्स
जबलपुर ।

निवेदन

महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय रायपुर के पुरातत्त्वीय उपविभाग में पाषाण और धातु की प्रतिमाएं, उत्कीर्णलेख, सिक्के, तमगे, मुद्राएं, हस्तलिखित पोथियां, शस्त्रास्त्र तथा अन्य पुरातत्त्वीय और ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री संग्रहीत की गई है जो भारतीय संस्कृति की विभिन्न अवस्थाओं और कलापरंपरा के संबंध में ज्ञानवर्द्धक जानकारी देती है। संग्रह में इतिहासपूर्व काल के मनुष्य द्वारा निर्मित पत्थर और तांबे के औजार हैं तथा भिन्न भिन्न युगों में बनाये गये मिट्टी के बरतन आदि भी हैं जो तत्तत्कालीन लोकजीवन और लोकरुचि का परिचय देते हैं।

संग्रह की समस्त सामग्री को दो भागों में बांटा गया है। एक भाग संग्रहालय दीर्घाओं में सर्वसाधारण के लिये प्रदर्शित है और दूसरा भाग अनुसंधान तथा विस्तार से अध्ययन के लिये सुरक्षित संग्रह में रखा गया है। प्रस्तुत प्रदर्शिका में दीर्घाओं में प्रदर्शित कलासामग्री के संबंध में संक्षिप्त जानकारी दी गई है। विस्तृत जानकारी के लिये विवरणात्मक सूचीपत्रों का प्रकाशन संग्रहालय द्वारा अलग से किया जा रहा है।

आशा है यह प्रदर्शिका संग्रहालय में आने वाले दर्शकों के लिये उपयोगी होगी।

मार्च १९६० ईस्वी — **बालचन्द्र जैन**

फाल्गुन १८८१ शक — स० संग्रहाध्यक्ष

विषय सूची

		पृष्ठ संख्या
एक.	महाकौशल के पुरातत्त्व का संक्षिप्त परिचय	१
दो.	प्रागैतिहासिक वस्तुएं	१६
तीन.	सोमवंशियों के समय की प्रतिमाएं	१८
चार.	कलचुरि कालीन प्रतिमाएं	२०
पांच.	गोंड़ कालीन प्रतिमाएं	२७
छह.	धातु प्रतिमाएं	२८
सात.	मृण्मूर्तियां	३१
आठ.	मिट्टी के प्राचोन बरतन	३१
नौ.	पत्थर और मिट्टी की मुद्राएं व मुद्रांक	३२
दस.	सिक्के	३३
ग्यारह.	उत्कीर्ण लेख	३५
बारह.	हस्तलिखित पोथियां	३६
तेरह.	फुटकर वस्तुएं	३६
चौदह.	नकशे और छायाचित्र	३७
	सहायक ग्रन्थ	३९

915.954

चित्रफलकों का विवरण

फलक एक — विष्णु; १२ वीं शती ईस्वी; रतनपुर, जिला बिलासपुर (मुखचित्र)

फलक दो — संग्रहालय में प्रदर्शित छत्तीसगढ़ के पुरातत्त्वीय तथा दर्शनीय स्थानों का नकशा

फलक तीन — (क) पाषाणयुगीन औजार; अंसर, जिला मन्दसौर
(ख) ताम्रयुगीन औजार; गुंगेरिया, जिला बालाघाट

फलक चार — (क) मंजुश्री; आठवीं-नौवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ख) मंजुश्री; हरे पाषाण की प्रतिमा; आठवीं-नौवीं शती ईस्वी; सिरपुर जिला रायपुर

फलक पांच — (क) पार्श्वनाथ; आठवीं-नौवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ख) महावीर; दसवीं-ग्यारवीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

फलक छह — (क) अम्बिका; दसवीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर
(ख) शिव; दसवीं-ग्यारहवीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

फलक सात — (क) गोविंद; दसवीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर
(ख) नृसिंह; दसवीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

फलक आठ — (क) ब्रह्मा; ग्यारहवीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर
(ख) उमामहेश्वर; बारहवीं शती ईस्वी; रतनपुर, जिला बिलासपुर

फलक नौ — (क) तारा और अवलोकितेश्वर के साथ बुद्ध; उत्कीर्ण लेख युक्त प्रतिमा; ९ वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ख) बुद्ध की लेख युक्त प्रतिमा; ग्यारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

फलक दस — (क) पार्वती पट्ट; ग्यारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ख) गोंड सरदार; सोलहवीं-सत्रहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

फलक ग्यारह — बुरा मत सुनो, बुरा मत कहो और बुरा मत देखो का संदेश देते तीन बंदर; १६ वीं-१७ वीं शती ईस्वी; राजनांदगांव, जिला दुर्ग

फलक बारह — (क) भूमिस्पर्शमुद्रा में बैठे बुद्ध की धातु प्रतिमा; आठवीं-नौवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ख) वज्रपाणि; धातु प्रतिमा; आठवीं-नौवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

फलक तेरह (क) मृण्मूर्तियां; बारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ख) मिट्टी के धूपदान; बारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

फलक चौदह (क) मिट्टी की टोंटीदार सुराही; ५ वीं शती ईस्वी; पसेवा, जिला मंदसौर
(ख) मिट्टी की कोठी; ग्यारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

फलक पंद्रह (क) धनदेव की मुद्रा; पहली शती ईस्वी पूर्व; राजघाट, वाराणसी
(ख) बुद्ध प्रतिमा युक्त मुद्रा; आठवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ग) अवलोकितेश्वर की बारह भुजी प्रतिमा युक्त मुद्रा; आठवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

फलक सोलह संग्रहालय में प्रदर्शित नकशा जिसमें महाकौशल में मिले आहत सिक्कों पर मिलने वाले चिह्न दशाये गये हैं

फलक सत्रह लक्ष्मण मंदिर सिरपुर का शिलालेख; सातवीं शती ईस्वी,

फलक अठारह (क) महाप्रवरराज के मल्लार ताम्रपत्रों की मुद्रा; छठी शती ईस्वी
(ख) किरारी से प्राप्त काष्ठ स्तंभलेख; दूसरी शती ईस्वी

फलक उन्नीस (क) लोहे के औजार; ग्यारहवीं-बारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर जिला रायपुर
(ख) सुनारी के उपयोग के औजार; ग्यारहवीं-बारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर जिला रायपुर

फलक बीस (क) सिल बट्टा; ग्यारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर
(ख) चक्की; ग्यारहवीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

फलक इक्कीस (क) संग्रहालय में संग्रहीत शस्त्रास्त्र के नमूने; अठारहवीं-उन्नीसवीं शती ईस्वी
(ख) उपरोक्त; अन्य प्रकार के

फलक बाईस (क) संग्रहालय के संग्रह की कलचुरि कालीन प्रतिमाओं पर पाये जाने वाले आभूषणों का चार्ट (पुरुषों के)
(ख) उपरोक्त (स्त्रियों के)

चित्रफलक दो

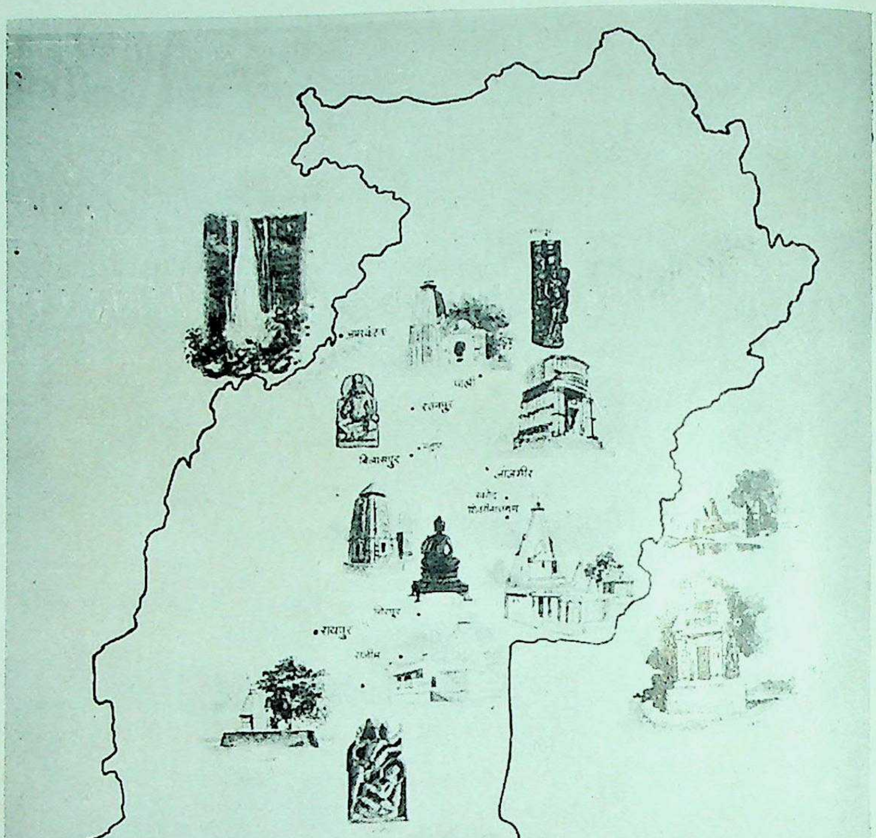

म० घा० स्मा० संग्रहालय रायपुर में प्रदर्शित छत्तीसगढ़ के पुरातत्त्वीय स्थानों का नकशा

पुरातत्त्व उपविभाग प्रदर्शिका

महाकौशल का पुरातत्त्व : संक्षिप्त परिचय

रायपुर, बिलासपुर और जबलपुर इन तीन आयुक्तीय संभागों के मिले-जुले प्रदेश को आजकल महाकौशल कहा जाता है। इस प्रदेश का बहुत सा हिस्सा प्राचीन काल में दण्डकारण्य के अन्तर्गत आता था। जिसे अब छत्तीसगढ़ कहते हैं, वहां कोसल या दक्षिण कोसल का राज्य स्थापित था। उत्तरीय जिले महिषमंडल और डाहलमंडल में विभाजित थे। महिषमंडल की राजधानी निमाड़ में माहिष्मती (आधुनिक मांधाता या महेश्वर) में थी और डाहलमंडल की राजधानी जबलपुर के निकट त्रिपुरी में। नागपुर और चांदा के आसपास का प्रदेश कभी तो विदर्भ के अन्तर्गत और कभी कोसल के अन्तर्गत रहता था।

प्राचीन साहित्य में छुटपुट रूप से इतिहास संबंधी सूचनाएं मिल जाती हैं। विशेषकर रामायण, महाभारत, पुराणेतिहास ग्रन्थ, जैन और बौद्ध धार्मिक ग्रन्थ तथैव राजशेखर, पद्मगुप्त, कृष्णमिश्र, मेरुतुंग और सोमेश्वर जैसे कवियों के नाटकों और काव्यग्रन्थों में भिन्न भिन्न राजवंशों तथा उन के समय के महाकौशल के इतिहास और सभ्यता के विषय में अनेक विवरण मिलते हैं। उसी प्रकार सातवीं शती ईस्वी में भारत भ्रमण करने वाले चीनी यात्री ह्यूनत्सांग के यात्रा-विवरण में भी कोसल की लोकसंस्कृति, बौद्ध विहारों और वहां के आचार-विचारों के विषय में अनेक बहुमूल्य सूचनाएं उपलब्ध हैं।

पुरातत्त्व ने भारतीय इतिहास की कड़ियां जोड़ने में बड़ा काम किया है। यही बात महाकौशल के इतिहास के लिये भी लागू होती है। उत्कीर्णलेख, सिक्के, स्थापत्य और शिल्प, ये सभी पुरातत्त्व के अन्तर्गत आते हैं। उत्कीर्णलेखों से न केवल राजनैतिक स्थिति बल्कि तत्कालीन लिपि और भाषा का भी ज्ञान होता है। ताम्रपत्रों पर खोदे गये दानपत्रों में अक्सर राजकीय व्यवस्था, शासन-प्रणाली, राजस्व तथा सामाजिक व्यवस्था, आदि के संबंध में सूचनाएं मिलती हैं। महाकौशल के अनेक प्राचीन राजवंशों को हम केवल उत्कीर्णलेखों के आधार पर ही जान सके हैं अन्यथा अन्यत्र कहीं उन का उल्लेख नहीं मिलता। उसी प्रकार त्रिपुरी, एरकिण और भागिला जैसे महाकौशल के प्राचीन नगर-राज्यों का अस्तित्व केवल उनके सिक्कों के बल पर ही सिद्ध हो सका है। इन के अलावा प्राचीन मंदिर, महल, दुर्ग, मूर्ति, चित्र आदि भी इतिहास के बड़े काम की वस्तुएं हैं।

प्रागैतिहासिक अवशेष

पाषाणयुग

आदिम काल में मनुष्य पशुओं की भांति वनों, पर्वतों और नदी घाटियों में विचरा करता था। वह कन्द-मूल-फल खाकर या वन्य पशुओं का शिकार करके अपना पेट भरता था। किन्तु सोचने और विचारने की शक्ति होने के कारण उसने अपना भोजन आसानी से प्राप्त करने के लिये नदियों में प्राप्त होने वाली बट्टियों को तोड़ फोड़कर उन्हें नुकीला बनाकर उनके औजार और हथियार बनाये। इस प्रकार के पत्थर के औजार वगैरः जिस काल के मनुष्य ने बनाये, उसे हम पाषाण युग कहने लगे हैं। विकास की अवस्थाओं को दृष्टि में रखते हुये पाषाणयुग को तीन खंडों में विभाजित किया गया है। जैसे पूर्व पाषाणयुग, मध्य पाषाणयुग और उत्तर पाषाणयुग। नर्मदा घाटी में पूर्व पाषाणयुग के औजार बहुत मिले हैं। नरसिंहपुर के निकट भुतरा नामक स्थान से ऐसे जो औजार मिले हैं, वे स्यात् महाकौशल के सबसे प्राचीन औजार हैं। वे मनुष्य की उस प्रारंभिक अवस्था के औजार हैं, जब वह बिना बेंट की पत्थर की कुल्हाड़ियों से कन्द-मूल-आदि खोदा और छीला करता था। पूर्व पाषाणयुग के अनंतर मध्य पाषाणयुग आया लेकिन इस युग का प्रतिनिधित्व करने वाले औजार वा अन्य वस्तुएं महाकौशल में कम ही मिली हैं। इसके विपरीत उत्तर पाषाणयुग के अवशेषों में महाकौशल बड़ा धनी है। इस युग के औजार अपने पूर्ववर्ती युग के औजारों से इस आधार पर अलग किये जा सकते हैं कि वे कुशलतापूर्वक तराशे गये हैं और ढ़ंग के बने हैं। सागर जिला इन औजारों की प्राप्ति के लिये खूब प्रसिद्ध है। जबलपुर जिले तथा अन्य स्थानों में भी ये औजार प्राप्त हुये हैं जिन में से बहुत से कलकत्ता के इंडियन म्यूजियम के संग्रह में हैं। उत्तर पाषाणयुग में मानवप्राणी मेहनत करके खाद्य पदार्थ उपजाने लगा था। खेती करने की आदत पड़ जाने पर मनुष्य के मन में सम्पत्ति इकट्ठा करने की भावना जागी। वह पशु पालने लगा। बाल बच्चों के आराम और सुविधा के लिये झोपड़ी बनाने लगा। बहुत सी झोपड़ियां बन जाने से वही गांव हो गया। फिर दूसरे गांव के लोगों से और दूसरी जातियों से सम्पर्क होना प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार रीति रिवाजों तथा संस्कृति का परस्पर आदान-प्रदान एवं समन्वय बढ़ा।

ताम्रयुग

पाषाणयुग के बाद ताम्रयुग (कहीं कांस्ययुग) आया और उसके बाद लौहयुग। ताम्रयुग में पत्थर के स्थान पर तांबे के औजार बनाये जाने लगे थे। ये औजार हमारे देश में इतनी अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं कि हमें मानना ही पड़ता है कि एक युग ऐसा भी था जिनमें औजार आदि तांबे के ही बनाये जाते थे, क्योंकि उस समय तक लोहे की खोज नहीं हो सकी थी। जबलपुर के निकट के एक स्थान से ईस्वी सन् १८६९ में एक कुल्हाड़ी प्राप्त हुई थी जो एक भाग टिन और सात भाग तांबे से बनी हुई थी। बालाघाट जिले के गुंगेरिया नामक गांव के निकट तांबे के

औजारों का एक बड़ा संग्रह ईस्वी सन् १८७० में अनायास ही प्राप्त हो गया था। गांव के दो लड़के ढ़ोर चराने गए। एक स्थान पर उन्होंने देखा कि भूमि में लोहे जैसी कोई वस्तु गड़ी है। लड़कों ने उसे पकड़कर खींचा तो वह कोई औजार निकला। जब और मिट्टी हटाई गई तो और भी औजार निकले। बाद में उस स्थान की ढंग से खुदाई करने पर ४२४ तांबे के औजार और १०२ चांदी के आभूषण प्राप्त हुये। इस दफीने की तांबे की समस्त वस्तुओं का वजन लगभग डेढ़ मन था तथा चांदी की वस्तुएं कुल एक सेर निकलीं।

शिलाचित्र

अपने निवास स्थान को अलंकृत बनाना हर एक को प्रिय होता है। प्रागैतिहासिक मानव ने भी अपने निवासगृहों को अलंकृत करने के उद्देश्य से पर्वत गह्वरों को तरह तरह के चित्रों से सजाया क्योंकि उस ने इन गह्वरों को अपना निवास स्थान बना लिया था। इन चित्रों के विषय अक्सर वही होते हैं जो तत्कालीन मानव के चतुर्दिक विद्यमान थे, जैसे पशुओं का आखेट, दो दलों में लड़ाई, आदि आदि। होशंगाबाद और रायगढ़ जिले में कबरा पहाड़ तथा सिंघनपुर की गुफाओं में ये चित्र आज भी देखे जाते हैं।

कबरा पहाड़ रायगढ़ से लगभग १० मील की दूरी पर है। यहां की सारी की सारी चित्रकारी लाल रंग में हुई है। छिपकली, घड़ियाल, सांभर तथा अन्य पशु और पंक्तिबद्ध मनुष्यों के चित्र यहां की दर्शनीय वस्तु हैं। सिंघनपुर के गुफाचित्र रायगढ़ से १२ मील की दूरी पर हैं किन्तु कबरा पहाड़ से विपरीत दिशा में हैं। इन चित्रों में चित्रित मनुष्य आकृतियां कहीं तो सीधी और डंडेनुमा हैं और कही सीढ़ीनुमा। यों कहिये कि आड़ी लकीरें खींचकर मनुष्यों की आकृतियां बना दी गई हैं।

पचमढ़ी महाकौशल के चित्रान्वित पर्वत-गह्वरों का दूसरा केन्द्र है। यहां और उसके आसपास के स्थानों में ५० के लगभग ऐसी गुफाओं का पता चल सका है जिनमें प्रागैतिहासिक काल की चित्रकारी विद्यमान है। पचमढ़ी से २० मील पर तामिया, २५ मील पर सोनभद्र और ४० मील पर झलई में भी ऐसी चित्रयुक्त गुफाएं देखी गई हैं। होशंगाबाद के निकट के आदमगढ़ की प्रागैतिहासिक चित्रकारी प्रसिद्ध हैं वहां से अनेक पाषाणयुगीन औजार भी प्राप्त हुये हैं।

वैदिक सभ्यता

वैदिक सभ्यता का आदि ग्रन्थ ऋग्वेद है। किन्तु उसमें न तो कहीं नर्मदा नदी का नाम मिलता है और न ही विंध्याचल पर्वत का। इससे ज्ञात होता है कि ऋग्वेदिक आर्य महाकौशल तक नहीं आ पाये थे। उत्तर वैदिक काल की कुछ अनार्य जातियों के नाम ऐतरेय ब्राह्मण में मिलते हैं जो महाकौशल के घने जंगलों में निवास करती थीं जैसे निषाद।

अनुश्रुतिगम्य इतिहास

वैदिक और उत्तर वैदिक काल के पश्चात के इतिहास की जानकारी के लिये रामायण, महाभारत और पुराण-ग्रन्थ मात्र ही वर्तमान साधन हैं। इन से ज्ञात होता है कि वैवस्वत मनु की बेटी इला के पुत्र पुरूरवा ने ऐल वंश की स्थापना की थी जिसे चन्द्रवंश भी कहते हैं। ऐल वंश से यादव वंश निकला और यादव वंश से हैहय। यादव वंश का मूल पुरुष यदु ययाति का बेटा था। इसे अपने पिता से मालवा और महिषमंडल का राज्य मिला था इधर इक्ष्वाकुवंशी पुरुकुत्स, नर्मदा और नागभूमि तक अपने राज्य का विस्तार कर चुका था। उसके एक भाई मुचकुंद ने पारियात्र और ऋक्ष पर्वतों के बीच नर्मदा किनारे एक नगर बसा कर उसे दुर्ग के समान चारों ओर से सुरक्षित कर लिया था। किन्तु हैहयवंशी राजा माहिष्मन्त ने उस नगर को जीत लिया और उसका नाम माहिष्मती रख दिया। रामायणी कथा में सूचना मिलती है कि दशरथनन्दन राम बहुत दिनों तक महाकौशल के जंगली प्रान्तों में आकर बसे थे। उन के वनवास के समय शायद यहीं उन का राक्षसों से युद्ध हुआ था जिस में वे ऋक्षों और वानरों की सहायता से विजयी हुये थे।

ईस्वी पूर्व ६०० से ईस्वी पूर्व २००

महाजनपद काल

ईस्वी पूर्व ६०० के लगभग उत्तर भारत में १६ महाजनपद राज्य स्थापित थे। इनमें से मगध, कोसल और अवन्ती के राज्य दूसरों की अपेक्षा अधिक सुसंगठित और शक्तिशाली थे। उस समय महाकौशल का कुछ हिस्सा अवन्ती महाजनपद के अन्तर्गत था जिसकी राजधानी माहिष्मती में थी। चेदि नामक महाजनपद में जबलपुर कमिश्नरी का बहुत सा हिस्सा सम्मिलित था विशेषकर वह हिस्सा जिसमें बुंदेलखण्डी बोली की प्रधानता है। महाजनपद काल में भारतवर्ष को भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के रूप में दो महान विभूतियों का लाभ हुआ। ऐसा अनुमान है कि जबलपुर और उसके आसपास के प्रदेश में तो उस समय बौद्ध धर्म का प्रभाव था क्योंकि वह अवन्ती तक फैल चुका था और दक्षिण कोसल या छत्तीसगढ़ के हिस्सों में जैन धर्म का विस्तार हुआ क्योंकि उसके पड़ोसी कलिंग में जैनधर्म का अच्छा प्रचार था।

दुर्भाग्य से महाजनपद काल के कोई भी पुरातत्त्वीय अवशेष महाकौशल क्षेत्र में प्राप्त नहीं हो सके हैं किन्तु धापेवाड़ा (बालाघाट) और तारापुर (रायपुर) में प्राप्त हुये कुछ चांदी के सिक्के संभवतः इस काल से संबंधित हैं। ये सभी सिक्के आहत मुद्राएं हैं किन्तु नन्द-मौर्य काल की आहत मुद्राओं से भिन्न प्रकार के हैं। इन सिक्कों का कोई एक आकार नहीं है और वे बहुत पतले हैं। इन पर सामने की तरफ चार चिह्न अंकित हैं यथा (१) हाथी (२) बैल (३) गोनांगल और (४) विन्दुमण्डलयुक्त नेत्र। इन सिक्कों की पीठ सपाट है और उस पर कोई चिह्न नहीं है। मौर्यकालीन मुद्राओं पर सामने पांच चिह्न होते हैं। इसलिये प्रस्तुत

मुद्राएं निश्चित रूप से मौर्य साम्राज्य की स्थापना होने से पहले की हैं। ये वजन में भी मौर्यकालीन सिक्कों से भिन्न हैं। मौर्य काल का कार्षापण सिक्का ३२ रत्ती का होता था और अर्ध कार्षापण सिक्का १६ रत्ती का जबकि इन सिक्कों का वजन केवल १२ रत्ती है। ३२ रत्ती के कार्षापण की तौल नन्द वंश के राज्यकाल में स्थिर की गई थी। यतः ये सिक्के नन्दों से पहले के हैं इसलिये उस तौल से सर्वथा अछूते रहे।

नन्द-मौर्य काल

नन्द वंश के राजाओं को पुराणों में अधार्मिक और शूद्र कहा गया है किन्तु थे वे बड़े प्रतापी। उनका साम्राज्य दूर दूर तक विस्तृत था, यहां तक कि सुदूर मैसूर तक भी वे राज्य करते थे और कलिंग पर आक्रमण करके उन्होंने उसे भी जीत लिया था। कलिंग और मैसूर तक राज्य करने वाले नन्दों का महाकौशल पर अवश्य ही पूर्ण अधिकार रहा होगा किन्तु उनके काल की कोई भी ऐतिहासिक वस्तु अभी तक इस क्षेत्र से प्राप्त नहीं हो सकी है।

नन्दों का पूरा का पूरा साम्राज्य मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्त ने अपने अधिकार में कर लिया था। चाणक्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त की सेना में आटविक लोगों की खूब भरती होती थी। ये आटविक जन महाकौशल के आटविक क्षेत्रों के निवासी हो सकते हैं। ईस्वी पूर्व २७३ में चन्द्रगुप्त के नाती अशोक का शासनकाल प्रारंभ हुआ जो २३६ ईस्वी पूर्व तक रहा। उसने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के अनंतर बहुत से शिलालेख और स्तंभलेख लिखवाये थे जिनमें से एक लघु शिलालेख जबलपुर जिले में रूपनाथ नामक स्थान में विद्यमान है। इसमें अशोक ने पुरुषार्थ की महत्ता बताई है। वह कहता है कि पुरुषार्थ करके छोटे पुरुष भी बड़ा काम कर डालते हैं। अशोक के समय के लगभग के दो लेख सरगुजा जिले में लक्ष्मणपुर के निकट रामगढ़ की गुफाओं में भी मिले हैं। इन उत्कीर्ण लेखों के विषय न तो राजनैतिक हैं और न धार्मिक किन्तु ये किसी सुतनुका नाम की देवदासी और उससे प्रेम करने वाले कलाकार देवदत्त से संबंधित हैं। जिन गुफाओं में ये लेख खुदे हैं उनमें कुछ चित्र भी हैं जो प्रायः नष्ट हो चुके हैं। गुफाओं के नाम जोगीमारा और सीताबेंगा हैं। इनमें से एक तो उपरोक्त देवदासी के रहने की कोठरी है और दूसरी नाटकशाला है जो भारत की सब से प्राचीन नाट्यशाला कही जा सकती है।

मौर्य काल के आहत सिक्के महाकौशल में अनेक स्थानों पर प्राप्त हुये हैं। सागर जिले में एरण और जबलपुर जिले में त्रिपुरी, इन मुद्राओं के मुख्य केन्द्र रहे हैं। वहां से चांदी और तांबे के आहत सिक्के मिले हैं। एरन के आहत सिक्के सबसे सुन्दर हैं और उनके चिह्न दूर दूर बने रहते हैं। छत्तीसगढ़ में भी आहत सिक्के बहुत से स्थानों में प्राप्त हुये हैं जिनमें अकलतरा, ठठारी और बिलासपुर मुख्य हैं। इनमें ठठारी के रूप्यमाषक सिक्के अपने किस्म के अद्वितीय सिक्के हैं।

मौर्यकाल में भारतवर्ष में अनेक जनपद राज्य और नगर राज्य स्थापित थे। अभी तक जो प्रमाण प्राप्त हो सके हैं उनसे विदित होता है कि महाकौशल में उस समय कम से कम तीन नगर-राज्य स्थापित थे। एक तो त्रिपुरी का, दूसरा एरकिण का और तीसरा भागिला का। एरकिण (आधुनिक एरन) नगरराज्य के सिक्कों में से कुछ तो ठप्पे से बनाये गये निशानों वाले हैं और कुछ सांचे में ढाले हुये। एक सिक्के पर वहां के राजा धर्मपालित का नाम मिला है और दूसरे पर एरकिण नगरी का नाम। त्रिपुरी नगर-राज्य के सिक्कों पर ३०० ई० पू० की ब्राह्मी लिपि में 'तिपुरी' लिखा मिलता है। ये सिक्के स्वयं त्रिपुरी से तथा होशंगाबाद जिले में खिड़िया नामक गांव से प्राप्त हुये हैं। भागिला नगर राज्य का पता भी सिक्कों से ही लगा है। इस के सिक्के होशंगाबाद जिले के जमुनिया नामक गांव में मिले हैं।

सातवाहन काल

महाकवि बाण के हर्षचरित में सेनापति पुष्यमित्र द्वारा अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ की भरी सभा में हत्या करके मगध का राजसिंहासन प्राप्त कर लेने का उल्लेख मिलता है। राज्य प्राप्त करके पुष्यमित्र ने एक नये राजवंश की स्थापना की थी जो इतिहास में शुंग वंश के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा जान पड़ता है कि शुंग लोग मौर्य साम्राज्य का केवल मध्यवर्ती हिस्सा ही प्राप्त कर सके थे क्योंकि ठीक उसी समय दक्खिन में सातवाहन वंश के आंध्र राजा अपने प्रभुत्व का विस्तार कर रहे थे और कलिंग में चेदि वंश का प्रताप बढ़ रहा था। पुष्यमित्र के राज्यकाल में ही बेक्ट्रिया के यवन भारत की ओर बढ़े और उन्होंने पाटलिपुत्र तक हमले किये। यवन मिलिन्द या मेनाण्डर के कुछ तांबे के सिक्के बालाघाट जिले में प्राप्त हुये थे। ऐसा माना गया है कि प्राचीन कालीन तांबे के सिक्के अक्सर वहीं पाये जाते हैं जहां उन का वास्तव में चलन रहा हो। किन्तु मिलिन्द के उपरोक्त तांबे के सिक्कों की प्राप्ति ने एक समस्या खड़ी कर दी है क्योंकि आज तक ऐसा कोई और प्रमाण नहीं मिल पाया है जिस के आधार पर यह कहा जा सके कि यवनों का विस्तार बालाघाट जिले तक हो सका था।

सातवाहनवंशीय नृपति अपने को दक्षिणापथपति कहते थे। इन की राजधानी महाराष्ट्र में प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) में थी। सिमुक इनका पहला राजा था। एक शिलालेख में उसे सिमुक सातवाहन कहा गया है जिससे ज्ञात होता है कि उसका दूसरा नाम सातवाहन था अथवा वह सातवाहन नाम के किसी राजा का वंशज था। सिमुक के वंश में अनेक प्रतापी नरेश हुये जिन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। शातकर्णि प्रथम के राज्यकाल में आंध्रों का विस्तार डाहल प्रदेश तक हो गया था और त्रिपुरी उनके अधिकार में आ गया था। शातकर्णि प्रथम और गौतमीपुत्र शातकर्णि के बीच में अनेक राजा हुये जिनमें से एक आपीलक भी था जिसका तांबे का सिक्का रायगढ़ के पास मिला है। गौतमीपुत्र, सातपुड़ा और विंध्य के प्रदेश का स्वामी था। इस प्रकार सातवाहन वंश के अनेक राजा महाकौशल के प्रदेशों पर ईस्वी सन २०० के

लगभग तक राज्य करते रहे। दक्षिण कोसल अर्थात छत्तीसगढ़ में इनके राज्य का पता चीनी यात्री ह्यूनत्सांग के यात्रा विवरण से चलता है। चीनी यात्री ने लिखा है कि प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान नागार्जुन दक्षिण कोसल की राजधानी के एक विहार में रहता था जिसे मौर्य सम्राट अशोक ने बनवाया था। ह्यूनत्सांग का कहना है कि नागार्जुन के समय दक्षिण कोसल का राजा कोई सातवाहनवंशीय था।

सातवाहनों के सिक्के महाकौशल में मिलते हैं। प्रारंभिक सातवाहनों में से शातकर्णि प्रथम के सिक्के जबलपुर और होशंगाबाद जिलों में मिले हैं। आपीलक का सिक्का रायगढ़ के निकट बालपुर में प्राप्त हुआ है और गौतमीपुत्र शातकर्णि का चांदी का अनुपम सिक्का त्रिपुरी की देन है। छत्तीसगढ़ के अनेक स्थानों में कुछ ऐसे तांबे के सिक्के मिलते हैं जो आकार में चौकोर हैं और उन पर एक ओर हाथी तथा दूसरी ओर खड़ी हुई स्त्री की प्रतिमा अथवा नाग बने हैं। ये सिक्के संभवतः सातवाहनों के उत्तर काल में स्थानीय रूप से चलाये गये होंगे। सातवाहनों के समय में भारत का विदेशों से और खासकर रोम से व्यापार बढ़ चला था। इसलिये विदेशी सिक्के भी भारतवर्ष में आने लगे थे। बिलासपुर जिले में रोम के सोने के सिक्के मिलते हैं।

सातवाहन राजाओं के समय के उत्कीर्ण लेख भी महाकौशल में मिले हैं। बिलासपुर जिले में बूढ़ीखार और जबलपुर जिले में बाघोरा में ऐसे दो लेख मिले हैं। किरारी (बिलासपुर) से प्राप्त जो काष्ठस्तंभ रायपुर संग्रहालय में है उसपर का लेख भी सातवाहनकालीन है और अपने ढंग का एक ही है। उसी प्रकार बिलासपुर जिले के ही एक दूसरे स्थान गुंजी में जिसे ऋषभतीर्थ भी कहते हैं, एक महत्वपूर्ण शिलालेख है जो कुमारवरदत्त का है।

कुषाण-क्षत्रप काल

ईस्वी सन ७८ में कुषाण राजा कनिष्क ने अपने राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में शक संवत् चलाया था। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर, पाकिस्तान) में थी किन्तु उसने पाटलिपुत्र तक अभियान किये थे। उसके पश्चात हुविष्क ने और हुविष्क के बाद वासुदेव ने कुषाण राजसिंहासन को सुशोभित किया। कुषाणों का राज्य मालवा तक तो विस्तृत था ही किन्तु महाकौशल में था कि नहीं, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर भी जबलपुर के निकट भेड़ाघाट में कुषाणकालीन और उन्हीं की कला से प्रभावित प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जिन पर लेख भी हैं। राजा हुविष्क का सोने का सिक्का हरदा में मिला है। वहीं से प्राप्त एक दूसरा सोने का सिक्का बाद के कनिष्क नाम के राजा का है। बिलासपुर जिले में भी कुषाणों के तांबे के सिक्के मिलते हैं। इन के आधार पर हमें यह मानने के लिये विवश हो जाना पड़ता है कि छत्तीसगढ़ में भी कुषाणों का राज्य अवश्य रहा है, भले ही वह अल्पकालीन हो।

कुषाणों के आधीन कुछेक वंश पश्चिम भारत में राज्य करते थे। उनमें से पहला वंश भूमक का था जो क्षहरात वंश कहलाता था। दूसरा वंश कर्दमकों का था जिसका पहला राजा

चष्टन, था। चष्टन का नाती महाक्षत्रप रुद्रदामा था। इस वंश का मालवा, माहिष्मती और निषादभूमि पर भी राज्य था। महाकौशल में अकेले सिवनी के आसपास ही इस वंश के इतने अधिक चांदी के सिक्के मिलते हैं कि वे अकेले ही इन लोगों के यहां तक राज्य-विस्तार को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं। इसके अलावा सागर जिले में एरन में शक श्रीधरवर्मा का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है।

ईस्वी ३०० से ८०० तक

वाकाटक-गुप्त काल

ईस्वी सन की तीसरी शती में जब सातवाहनों की शक्ति क्षीण हो गई तो वाकाटकों ने अपना राज्य स्थापित किया। इनका पहला राजा विंध्यशक्ति था जिसे कुछ विद्वानों ने मूलतः बुंदेलखण्ड का माना है। वाकाटकों की राजधानी नागपुर के निकट के प्रदेश में थी। विंध्यशक्ति के बेटे प्रवरसेन प्रथम के बाद वाकाटक राज्य के अनेक टुकड़े हो गये। मुख्य शाखा में रुद्रसेन प्रथम हुआ जिसकी माता भवनागा, नाग वंश की थी जो उस समय भारशिव कहे जाते थे। रुद्रसेन प्रथम के नाती रुद्रसेन द्वितीय का विवाह मगध के गुप्तवंशी महाराजाधिराज चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की बेटी प्रभावती गुप्ता के साथ हुआ। रुद्रसेन द्वितीय के बेटे प्रवरसेन के ताम्रपत्र लेख, छिंदवाड़ा, बालाघाट और बैतूल जिले के अनेक स्थानों में प्राप्त हुये हैं। उस के बाद नरेन्द्रसेन और तत्पश्चात पृथ्वीषेण द्वितीय ने राज्य किया।

गुप्त वंश का प्रभाव महाकौशल पर उस समय पड़ा जब उस वंश के राजा समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के राजाओं को जीतकर दक्षिणापथ की विजय-यात्रा की। सागर जिले में स्थित एरन में समुद्रगुप्त को वहां के स्थानीय राजाओं से युद्ध करना पड़ा था। वहां से प्राप्त उस के एक खंडित शिलालेख से विदित होता है कि उसने एरन को 'स्वभोगनगर' बना लिया था और उसकी महारानी ने वहां एक मंदिर का निर्माण कराया था। समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ यात्रा के समय छत्तीसगढ़ में महेन्द्र नामक राजा राज्य करता था। उसी प्रकार बस्तर के जंगली प्रदेशों पर व्याघ्रराज का प्रभुत्व था और बैतूल के आसपास के प्रदेशों पर अन्य आटविक राज्य स्थापित थे। इन सभी राजाओं ने समुद्रगुप्त के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी। समुद्रगुप्त के बेटे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में जबलपुर के निकट तिगवां का सपाट छत वाला मंदिर बना। इसी वंश के एक राजा बुधगुप्त ने एरन में भगवान जनार्दन का स्तंभ खड़ा किया था। बुधगुप्त के बेटे नरसिंहगुप्त के समय में एरन पर हूणों का आक्रमण हुआ और उन्होंने उसे जीत लिया किन्तु भानुगुप्त के समय तक अर्थात् ईस्वी सन् ५१० में एरन पुनः गुप्तों के अधिकार में आ गया यद्यपि हूणों से होने वाले युद्ध में भानुगुप्त के सेनापति गोपराज को अपने प्राण देने पड़े।

जबलपुर, दमोह, सागर, सिवनी, बैतूल आदि जिलों में गुप्तकालीन पुरातत्व-सामग्री मिलती है। एरन, तिगवा और सकौर के मंदिर निश्चयेन गुप्तकालीन हैं। काचगुप्त के सोने के सिक्के सकौर (दमोह जिला) में मिले हैं। समुद्रगुप्त के अनेक सिक्के भी उसी स्थान से प्राप्त हुये हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सोने के सिक्के न केवल सागर और दमोह जिलों में ही बल्कि जबलपुर, होशंगाबाद, बैतूल और सिवनी जिलों में भी प्राप्त हुये हैं। कुमारगुप्त के बेटे स्कन्दगुप्त का केवल एक ही सिक्का सकौर में मिला है।

गुप्त राजवंश की राजधानी मगध में थी। इतना बड़ा साम्राज्य सम्हालने के लिये उन्होंने विभिन्न प्रदेशों में सामन्त राजाओं की नियुक्ति की थी। परिव्राजक वंश के महाराजा और उसी प्रकार उच्चकल्प के महाराजा गुप्तों के आधीन थे। इनके दानपत्रों में गुप्त संवत् में तिथि पड़ी हुई है जो कारीतलाई, बैतूल तथा अन्य स्थानों में मिले हैं। छत्तीसगढ़ में भी गुप्तों का प्रभाव रहा है और यहां के एक राजवंश के ताम्रपत्र पर गुप्त संवत् का उपयोग हुआ है।

गुप्तोत्तर-कालीन छत्तीसगढ़

गुप्त काल में छत्तीसगढ़ या दक्षिण कोसल पर गुप्त वंशियों का प्रभाव था, यह ऊपर बताया जा चुका है। कभी कभी विदर्भ का वाकाटक वंश भी यहां आक्रमण करके अपना अल्प-कालीन प्रभाव छोड़ जाता था। किन्तु यह तो लगभग निश्चित सा ही है कि दक्षिण कोसल में स्थानीय राजे ही राज्य कर रहे थे। इन राजाओं ने गुप्त साम्राज्य के कमजोर पड़ने पर अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया और तब वे गुप्तों के सामन्त न रहे। छत्तीसगढ़ में नल, शरभपुरीय और पाण्डु इन तीन राजवंशों का मुख्य स्थान है। इन के संबंध की बहुत सी पुरातत्त्व सामग्री छत्तीसगढ़ के जिलों में मिलती है।

नलवंश के राजाओं और उनके राज्य विस्तार के संबंध में विशेष जानकारी आज तक उपलब्ध नहीं है। इनके कुल मिलाकर चार शिलालेख और थोड़े से सोने के सिक्कों के आधार पर ही हम इस वंश की क्रमानुगतिता का किंचित् अनुमान कर सकते हैं। इन चार लेखों में से दो उड़ीसा में प्राप्त हुये हैं और शेष दो अमरावती तथा रायपुर जिलों में। सोने के सिक्के बस्तर जिले में प्राप्त हुये हैं। इस प्रकार अनुमान किया जाता है कि नलवंशी राजाओं ने अपने राज्य का विस्तार एक ओर उड़ीसा तक और दूसरी ओर वाकाटकों को हराकर नागपुर तथा विदर्भ तक कर लिया था। वाकाटकों ने जब पुनः शक्ति प्राप्त की तो नागविदर्भ प्रदेश तो नलों के हाथ से निकल गया किन्तु छत्तीसगढ़ और बस्तर के प्रदेशों पर वे राज करते रहे। उन का यह राज्य कब तक रहा इस संबंध की निश्चित सूचनाएं प्राप्त नहीं होती हैं। संभव है, सोमवंशियों के उदय तक वे छत्तीसगढ़ के राजा बने रहे हों।

गुप्त संवत् १८२ या २८२ (ईस्वी ५०१ या ६०१) का जो लेख आरंग (जिला रायपुर) से मिला है उसमें छत्तीसगढ़ के एक अन्य राजवंश के राजाओं के नाम मिलते हैं जिनमें

सबसे पहले शूरा हुआ, फिर उसका बेटा दयित, फिर विभीषण और भीमसेन प्रथम, तत्पश्चात् दयितवर्मा द्वितीय और सब से अन्त में भीमसेन द्वितीय ने राज्य किया जिसके राज्य में उक्त दानपत्र लिखा गया था। इस प्रकार ईस्वी ४थी या ५वी शती में शूरा का वंश दक्षिण कोसल में उदित हो चुका था।

शूरा वंश के राज्यकाल के लगभग एक और राजवंश दक्षिण कोसल के एक भाग में अपना प्रभुत्व स्थापित किये हुये था। उस वंश की राजधानी शरभपुर में थी। शरभपुर कहां था और अब कौन सा स्थान उसका खंडहर बना हुआ है, यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है किन्तु अनुमान है कि उसे या तो रायपुर जिले में या बिलासपुर जिले में ही कहीं होना चाहिये। इन की दूसरी उपराजधानी श्रीपुर में स[illegible] थी जिसे आजकल सिरपुर कहते हैं। शरभपुरीय वंश के राजाओं में पहला राजा शरभ था जिसके नाम पर राजधानी का नाम शरभपुर पड़ा था। शरभ के बेटे नरेन्द्र के दो ताम्रपत्र अभी तक प्राप्त हो चुके हैं। एक पिपरदुला से और दूसरा कुरुद से। ऐसा अनुमान किता जाया है कि नरेन्द्र की बहिन लोकप्रकाशा मेकल के पाण्डु घराने में ब्याही गई थी। नरेन्द्र के बाद संभवतः महेन्द्र हुआ जिस के सोने के सिक्के रायपुर और चांदा जिलों में मिले हैं। उसके बाद प्रसन्नमात्र हुआ। इस के भी चांदी और सोने के सिक्के मिलते हैं। हाल में प्राप्त हुये एक ताम्रपत्र लेख से पता चलता है कि प्रसन्नमात्र ने एक नया नगर बसा कर उसे प्रसन्नपुर नाम दे दिया था। प्रसन्न के बेटे जयराज के ताम्रपत्र लेख रायपुर और बिलासपुर जिलों में मिले हैं। उसके बाद राज्य करने वाले सुदेवराज ने शरभपुर और श्रीपुर दोनों स्थानों से ताम्रपत्र दिये थे जो रायगढ़ और रायपुर जिलों में मिले हैं। उसी प्रकार सुदेवराज के भाई प्रवरराज के ताम्रपत्र भी ठाकुरदिया और मल्लार में मिले हैं। प्रवरराज के छोटे भाई व्याघ्रराज का एक ताम्रपत्र लेख हाल में ही मल्लार में मिला है जो बड़ा महत्वपूर्ण है। इन तीनों भाइयों के राज्यकाल में पाण्डुवंश के तीवरदेव ने दक्षिण कोसल को जीत कर श्रीपुर को अपनी राजधानी बना लिया था।

पाण्डु वंश को सोमवंश भी कहा जाता है। उस में उत्पन्न तीवरदेव महान प्रतापी राजा था। वह समस्त कोसल का अधिपति था। उसके दो ताम्रपत्र राजिम और बालोदा में मिले थे। अभी हाल में उसका तीसरा ताम्रपत्र रायगढ़ जिले में बोण्डा में मिला है। तीवरदेव के बेटे नन्न का ताम्रपत्र अढभार (जिला बिलासपुर) में मिला है। तीवरदेव के पिता का नाम भी नन्न था, इन्द्रबल उसका दादा था और उदयन परदादा। इस प्रकार इन पाण्डुवंशियों ने पांचवीं शती के आसपास ही अपना राज्य स्थापित कर लिया था। भांदक में मिले शिलालेख में इन्द्रबल के चार बेटों का होना बताया गया है; उनमें से एक ने भांदक में एक बौद्ध मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। इन्द्रबल के तीसरे बेटे ईशानदेव का लेख खरोद (बिलासपुर) में मिला है। इस प्रकार पाण्डुवंशियों का राज्य विस्तार दूर दूर तक होना सिद्ध होता है, किन्तु इस वंश ने सब से अधिक उन्नति महाशिवगुप्त बालार्जुन के राज्यकाल में की। वह स्वयं तो शैव था किन्तु उसकी

माता जिसका नाम वासटा था, वैष्णव थी, जिन्होंने सिरपुर में ईंटों के विशाल और भव्य मंदिर का निर्माण कराया था। बालार्जुन का राज्यकाल बड़ा था, कम से कम ५७ वर्ष तो उसने राज्य किया ही था। इस बीच उस ने न केवल शैव मंदिरों का निर्माण कराया बल्कि बौद्ध मंदिरों और विहारों को भी खूब दान दिया। इस के राज्यकाल में श्रीपुर ने दूर दूर तक अपनी ख्याति फैलाई। महाशिवगुप्त बालार्जुन के समय के इतने अधिक शिलालेख सिरपुर में प्राप्त हुये हैं कि ज्ञात होता है कि वह लगातार निर्माण कार्य कराता रहता था। महाशिवगुप्त के पश्चात् दक्षिण कोसल का पाण्डव वंश कमजोर पड़ गया और क्रमशः समाप्त हो गया। संभवतः पहले तो बदामी के चालुक्यों ने इनकी शक्ति छिन्न भिन्न की और बाद में कलचुरियों ने इन्हें यहां से खदेड़ कर भगा दिया।

कलचुरियों का प्रारम्भ

बैतूल जिले के तीवरखेड़ और मुलताई नामक स्थानों से नन्नराज युद्धासुर नामक एक राजा के ताम्रपत्र प्राप्त हुये हैं जो अपने को राष्ट्रकूटवंशीय कहता है। वह बैतूल के क्षेत्र पर ७वीं-८वीं शती ईस्वी में राज्य करता था यद्यपि अचलपुर उसकी राजधानी थी। किन्तु नन्नराज युद्धासुर से पूर्व ही कलचुरि लोग बैतूल तथा अन्य प्रदेशों तक अपने राज्य का विस्तार करने लगे थे। उस समय उनकी राजधानी माहिष्मती में थी। वे वहां ६ ठी शती में ही पहुंच चुके थे। उन्होंने गुजरात, महाराष्ट्र, मालवा और यहां तक कि कोंकण को भी अपने आधीन कर लिया था। इस शाखा के कृष्णराज नामक राजा के सिक्के बैतूल और जबलपुर जिलों में प्राप्त हुये हैं। वे सभी सिक्के चांदी के हैं और आकार में छोटे हैं। उन पर एक तरफ कृष्णराज की प्रतिमा है और दूसरी तरफ उस का नाम लिखा है।

ईस्वी सन् ८०० से १३००

त्रिपुरी के कलचुरि

ईस्वी आठवीं शती में चालुक्यों की शक्ति को छिन्न भिन्न करके राष्ट्रकूट वंश के राजाओं ने दक्खिन से आकर लगभग समूचे महाकौशल में अपने प्रताप का प्रदर्शन किया था। गोविन्द तृतीय के संबंध में एक ताम्रपत्र में उल्लेख मिलता है कि उसने नर्मदा के तट पर विंध्य के चरणों में अनेक मंदिर बनवाये थे व धार्मिक कृत्य संपन्न किये थे। ईस्वी सन् ८१४ में अमोघवर्ष राष्ट्रकूटों का राजा हुआ। उसका उल्लेख संभवतः कारीतलाई के कलचुरि संवत ५९३ (ईस्वी ८४२-४३) के एक खंडित शिलालेख में है। अमोघवर्ष के बाद कृष्ण द्वितीय और फिर इन्द्र तृतीय ने उत्तर भारत में अनेक युद्ध किये जिनमें उन्हें कलचुरियों की सहायता मिलती रही। कृष्ण तृतीय ने बुंदेलखण्ड तक जाने की हिम्मत की। इस राजा के शिलालेख छिंदवाड़ा जिले में मिले हैं किन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि बुंदेलखण्ड के अभियान के संबंध में त्रिपुरी के

कलचुरि नरेश और कृष्ण तृतीय के बीच मनमुटाव पैदा हो गया था। तबसे इन दोनों वंशों की मित्रता एवं पारस्परिक संबंध टूट गये।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, कलचुरि लोगों की पहली राजधानी माहिष्मती में थी। वहां से ही इन की एक शाखा त्रिपुरी चली आई। ये लोग माहिष्मती से त्रिपुरी कब आये और क्यों आये, इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु डाहलमण्डल में अपना राज्य स्थापित करने वाले इस वंश का यहां का सर्व प्रथम राजा कोकल्लदेव था जिसका राज्य ईस्वी सन ८४२ और ८४५ के बीच प्रारंभ हुआ। कोकल्लदेव के १८ बेटे थे। उनमें से एक ने दक्षिण कोसल याने छत्तीसगढ़ में पहुंच कर तुम्माण में कलचुरि वंश की लहुरी शाखा की स्थापना की जो बाद में उठ कर रत्नपुर चली गई। इस दूसरी शाखा के बारे में हम आगे कहेंगे।

कलचुरि कोकल्ल का बेटा शंकरगण, मुग्धतुंग, प्रसिद्धधवल तथा रणविग्रह के नाम से विख्यात था। वह बड़ा वीर और योद्धा था। उसने पूर्वी समुद्र के किनारे तक विजय की थी और दक्षिण कोसल के सोमवंशियों को हराकर उनसे पाली (बिलासपुर जिला) छीन ली थी। मुग्धतुंग का बेटा युवराजदेव प्रथम, १० वीं शती के द्वितीय पाद में राजा बना। कारीतलाई में मिले शिलालेख में उसकी गौड़, कोसल, गूर्जर और दक्षिण विजयों का उल्लेख है। युवराजदेव वीर होने के साथ ही साहित्यप्रेमी और धार्मिक प्रकृति का राजा था। उस के दरबार में कवि राजशेखर रहते थे जिनका नाटक विद्धशालभंजिका युवराजदेव की सभा में खेला गया था। सद्भावशंभु नामक शैव आचार्य को युवराजदेव ने त्रिपुरी के गोलकी मठ के प्रबंध के लिये तीन लाख गांवों का एक प्रदेश दान में दे दिया था; मत्तमयूर नगर से प्रभावशिव आचार्य को बुलाकर बघेलखंड के चंद्रेह में स्थापित मठ का प्रबंधकार्य सौंपा गया और तीसरा मठ गुर्गी में स्थापित हुआ। युवराजदेव की महारानी नोहला ने बिलहरी में नोहलेश्वर मठ का निर्माण कराकर उसके प्रबंध के लिये सात गांवों का दान दिया था।

युवराजदेव प्रथम का बेटा लक्ष्मणराज ९५० ईस्वी के लगभग राजसिंहासन पर बैठा। इस के समय में कारीतलाई में सुप्रसिद्ध विष्णुमंदिर का निर्माण हुआ तथा अनेक स्थानों पर और भी निर्माण कार्य हुये। लक्ष्मणराज के अनंतर कलचुरि राज्य डगमगाने लगा था किन्तु ईस्वी सन् १०१५ में सिंहासन पर बैठने के बाद गांगेयदेव ने उसे फिर सम्हाल लिया। गांगेयदेव इतना शक्तिशाली और समृद्ध था कि उसने सोने के सिक्के चलाये जिनकी नकल भारत के तत्कालीन अन्य राजवंशों ने भी की। गांगेयदेव के बेटे कर्ण का तो कहना ही क्या। वह वास्तव में कर्ण के समान था। उसने न केवल कर्णावती नगरी बसाई बल्कि काशी में राजघाट पर कर्णमेरु नामक साप्तभौम शिवमंदिर का निर्माण कराया था। अमरकंटक के प्राचीन मंदिरों का निर्माता भी कर्ण ही था। कर्ण के पश्चात के कलचुरि नरेश उतने प्रतापी नहीं थे, फिर

भी १२ वीं शती के अन्त अन्त तक उनका साम्राज्य किसी न किसी रूप में स्थिर रहा आया। इस बीच नरसिंहदेव और उनकी माता अल्हणदेवी ने भेड़ाघाट में वैद्यनाथ का सुख्यात मंदिर बनवाया।

त्रिपुरी के कलचुरियों के राज्यकाल में निर्मित मंदिरों के खण्डहर महाकौशल की जबलपुर कमिश्नरी तथा बघेलखण्ड के विभिन्न स्थानों में जगह जगह मिलते हैं। जहां तक ज्ञात हो सका है त्रिपुरी-कलचुरियों के समय की कला का प्राचीनतम नमूना भेड़ाघाट स्थित चौसठ जोगिनी मंदिर और उसमें की योगिनी-प्रतिमाएं हैं। इन प्रतिमाओं में से बहुत सी खंडित हो चुकी हैं तो भी उनकी निर्माण कला देखते ही बनती है। कारीतलाई, बिलहरी, त्रिपुरी, पनागर, नोहटा, रीठी, अमरकंटक, सोहागपुर तथा रीवां के निकट के चंद्रेह, गुर्गी आदि ऐसे स्थान हैं जहां कलचुरि-कला का खुलकर विकास हुआ था।

रतनपुर के कलचुरि

ऊपर बताया जा चुका है कि त्रिपुरी के कलचुरि राजा कोकल्लदेव प्रथम के अठारह बेटे थे। उनमें से जेठा तो त्रिपुरी के राजसिंहासन पर बैठा और सबसे छोटे कलिंगराज ने दक्षिण कोसल की ओर जाकर तुम्माण में अपनी राजधानी बनाई। लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि इस कलिंगराज का जमाया हुआ वंशवृक्ष सौ सवा-सौ वर्ष राज्य करने के बाद समाप्त हो गया। तब फिर कोई कलिंगराज वहां त्रिपुरी से पहुंचा जिसने तुम्माण के राज्य को पुनः स्थिर किया। इस कलिंगराज का बेटा कमलराज हुआ और कमलराज का बेटा रत्नराज जिस ने तुम्माण में अनेक मंदिर और मठ बनवाये थे। अन्त में उसने वहां से ४५ मील की दूरी पर रत्नपुर नामक नगर बसाया और अपनी राजधानी उठाकर वहां ले गया। रत्नराज के बेटे पृथ्वीदेव ने भी तुम्माण में पृथ्वीदेवेश्वर नामक मंदिर का निर्माण कराया था। पृथ्वीदेव के बेटे जाजल्लदेव ने जाजल्लपुर (वर्तमान जांजगीर, बिलासपुर) में तपस्वियों के निवास के लिये मठ, आम्रवन और सरोवर आदि का निर्माण कराया था। पाली के शिवमंदिर में भी जाजल्लदेव का नाम खुदा हुआ मिलता है। जाजल्लदेव प्रथम का बेटा हुआ रत्नदेव द्वितीय। उसके बाद पृथ्वीदेव द्वितीय, जाजल्लदेव द्वितीय, रत्नदेव तृतीय और पृथ्वीदेव तृतीय हुये। इन सभी राजाओं के समय में छत्तीसगढ़ के भिन्न-भिन्न स्थानों में मंदिरों, मठों, सरोवरों आदि का निर्माण होता रहा। आरंग, शिवरीनारायण, राजिम, सिरपुर, पाली, रतनपुर, तुम्माण, जांजगीर, मल्लार आदि ऐसे स्थान हैं जहां रतनपुर की कलचुरि शाखा के राज्य-काल की पुरातत्त्व-सामग्री विद्यमान है। मल्लार की कलचुरि-कालीन प्रतिमाएं एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं। जांजगीर का विष्णुमंदिर देखते ही बनता है यद्यपि वह अधूरा ही है। शिवरीनारायण के मंदिर की भव्यता निराली है। रतनपुरीय कलचुरियों के शिलालेख भी बहुत मिले हैं और ताम्रपत्र तो प्रायः प्रति वर्ष नये मिलते रहते हैं। इसके अलावा इस वंश के राजाओं के सोने और तांबे के सिक्के भी छत्तीसगढ़ में और विशेषकर बिलासपुर जिले में प्राप्त होते हैं।

रायपुर के कलचुरि

रतनपुर के कलचुरि राजाओं की वंशपरंपरा नागपुर के भोंसले राजाओं के आक्रमण तक चलती रही और उसमें अनेक नरेश हुये किन्तु वे उतने शक्तिसम्पन्न नहीं थे।

चौदहवीं शती में रतनपुर की कलचुरि शाखा से एक उपशाखा फूटी जिसने रायपुर को अपनी राजधानी बनाया। इस उपशाखा के राजा ब्रह्मदेव के शिलालेखों से विदित होता है कि उसके समय में ईस्वी सन् १४०२ में रायपुर शहर में हाजिराजदेव ने हट्टकेश्वर महादेव के मंदिर का निर्माण कराया था। उसी प्रकार ईस्वी सन् १४१५ में खलारी में विष्णुभक्त देवपाल मोची ने भगवान विष्णु के मंदिर का निर्माण कराया था। रायपुर की कलचुरि शाखा भी अन्त में रतनपुर की कलचुरि शाखा के समान भोंसलों द्वारा परास्त की गई।

बस्तर के नागवंशी

रतनपुर के कलचुरियों के सामन्त कवर्धा और कांकेर में राज्य करते थे किन्तु उन दोनों में कांकेर वाले अधिक शक्तिशाली रहे। कांकेर से आगे बस्तर के इलाकों में नाग और काकतीय वंशों का राज्य रहा है। काकतीय लोग तो मुसलमानों के राज्यकाल के बीच राज्य करते रहे (और भारत के स्वतंत्र होने तक करते रहे) किन्तु नाग वंशी उन से भी पहले बस्तर के अधिपति थे। उन के समय के अनेक शिलालेख बस्तर जिले में प्राप्त हुये हैं जिनमें सब से पुराना ईस्वी सन् १०२३ का है। नागवंशियों के राज्यकाल का पता ईस्वी सन् १३४२ तक चलता है।

ईस्वी सन् १३०० के बाद

गोंड़, मुस्लिम और मराठे

ईस्वी सन् १३०० के बाद का महाकौशल राजनैतिक दृष्टि से असंगठित और अव्यवस्थित कहा जा सकता है सिवाय इसके कि यहां गोंड़ वंशी राजाओं ने कुछ समय के लिये स्थिर रूप से अपना राज्य स्थापित किया। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, छत्तीसगढ़ में कलचुरियों की दो शाखाएं रतनपुर और रायपुर में १८ वीं शती के मध्य तक राज्य करती चली आ रही थीं। उसी प्रकार उन के भूतपूर्व सामन्तों ने भी अपने छोटे छोटे राज्य स्थापित कर रक्खे थे।

ईस्वी सन् १२०० के पश्चात् जब त्रिपुरी के कलचुरियों का वंश क्रमशः समाप्त हो गया तब गोंड़ों के पूर्व पुरुषों के प्रयत्नों से गोंड़ राजवंश का उदय हो चला था। यद्यपि सन् १२०० से लेकर १४०० तक का गोंड़ों का इतिहास अंधकारमय है, फिर भी गोंड़ों की तथाकथित वंशावलियों और रामनगर की प्रशस्ति को ऐतिहासिक दृष्टि से थोड़ा बहुत महत्व तो देना ही पड़ेगा जिनके अनुसार गोंड़ों के मूल पुरुष मदनसिंह और सुप्रसिद्ध गोंड़ महाराजा संग्रामशाह के

बीच १४ पीढ़ियों के अन्तर का पता चलता है। कुछ भी हो, गढ़ा के गोंड़ लोग उन्नति कर के १५ वीं शती में इतने प्रतापी और समृद्ध हो चुके थे कि उन का राजा संग्रामशाह अपने नाम के सोंने के सिक्के चलाने लगा था। संग्रामशाह का दूसरा नाम आमणदास था। वह बावन गढ़ों का स्वामी था। केवल गढ़ ही नहीं, उसने महल भी बनवाये थे और संग्रामपुर नामक नगर का निर्माण किया था। संग्रामशाह के बेटे दलपतशाह ने दुर्गावती से विवाह किया था जो चंदेल वंश की कन्या थी। रानी दुर्गावती के समय में गढ़ा के निकट सुन्दर रानीताल का निर्माण हुआ। साथ में उनकी चेरी द्वारा चेरीताल और उनके मंत्री अधारसिंह द्वारा अधारताल का निर्माण कराया गया। रानी दुर्गावती की बहादुरी की कथाएं आज तक प्रसिद्ध हैं। किन्तु बरेला के युद्ध से गोंड़ों की हालत गिर गई और वे एक प्रकार से लुट से गये। उस समय से ही गढ़ा में मुगलों का एक अधिकारी रहने लगा जो राजस्व वसूल कर के दिल्ली भेजता था। अपनी रही सही हालत में गोंड़ नृपति कुछ समय तक तो गढ़ा में रहे, फिर अपनी राजधानी रामनगर ले गये जहां उन्होंने महल और मंदिरों का निर्माण कराया।

ऊपर उल्लिखित गढ़ा-मंडला के गोंड़ घराने के अलावा गोंड़ों का एक घराना छिंदवाड़ा जिले में स्थित देवगढ़ में राज्य करता था। उसमें जाटबा, कोकशाह आदि राजे हुये। ये मुगलों के आधीन थे। इनका एक राजा बख्तशाह अन्त में मुसलमान होकर बख्त बुलंद बन गया था।

सागर और दमोह जिलों में तुगलक और खलजी सुलतानों के समय के शिलालेख प्राप्त हुये हैं। उधर निमाड़ में फारूखी सुलतानों का राज्य स्थापित था जिसमें असीरगढ़ का सुप्रसिद्ध गढ़ था। बुरहानपुर की भव्य इमारतें इन्हीं फारूखी सुलतानों के समय में निर्मित हुई थीं, किन्तु बाद में मुगल बादशाह उन के मालिक हुये। शाहजहां के राज्यकाल में औरंगजेब बुरहानपुर में आकर रहा था।

सागर जिले में छत्रसाल ने मुगलों की सेनाओं से अनेक युद्ध किये थे। उन के बेटे हृदयशाह ने गढ़ाकोटा में अपनी राजधानी कायम की किन्तु पिता की मृत्यु के पश्चात पन्ना को अपनी राजधानी बनाया। छत्रसाल ने अपने राज्य के बहुत से इलाके बाजीराव पेशवा को अपना बेटा मानकर सौंप दिये जिसके प्रबंध के लिये पेशवा ने सागर में सूबेदार नियुक्त किये थे। इस प्रकार सागर तरफ के प्रदेशों पर मराठों का शासन चलता रहा।

उसी प्रकार छत्तीसगढ़ के प्रदेश भी मराठों के अधिकार में उस समय आये जब भोंसलों के सेनापति भास्कर पन्त ने अठारहवीं शती के मध्य में रायपुर और रतनपुर के अन्तिम कलचुरि राजाओं की कमजोरी से लाभ उठा कर उक्त प्रदेश को अपने आधीन कर लिया। भोंसलों के समय में रतनपुर, रायपुर, सिरपुर तथा छत्तीसगढ़ के अन्य अनेक स्थानों में देवमंदिरों तथा अन्य इमारतों का निर्माण हुआ जिनके संबंध में ढंग से अध्ययन करने कीआवश्यकता है।

प्रागैतिहासिक वस्तुएं

पाषाणयुगीन औजार (चित्रफलक तीन-क)

अपनी प्रारंभिक अवस्था में पशुओं की भाति मनुष्य भी वन, पर्वत और नदी घाटियों में विचरा करता था और कन्दमूल-फल खाकर या वन्य पशुओं का शिकार करके अपना पेट भरता था। उस समय अपना भोजन आसानी से प्राप्त करने के लिये उसने नदियों में प्राप्त होने वाली बट्टियों को तोड़ फोड़ कर उन्हें नुकीला बनाकर उन के औजार और हथियार बनाये थे। ये औजार यद्यपि बेढंगे हैं किन्तु उन से तत्कालीन मनुष्य का काम निकल जाता था। जिस काल में इस प्रकार के पत्थर के औजार और हथियारों का मनुष्य ने निर्माण किया, उस काल को पाषाणयुग कहा जाता है जिसे तीन भागों में बांटा गया है, पूर्व पाषाणकाल, मध्य पाषाणकाल, और उत्तर पाषाणकाल।

संग्रहालय में प्रदर्शित पाषाणयुगीन औजार चम्बल नदी की एक सहायक अन्सर के किनारे भानपुरा के निकटवर्ती स्थानों से प्राप्त किये गये हैं। थोड़े से औजार रेतम के भी हैं। इन औजारों में से कुछ में दोनों तरफ धार है, कुछ हाथ की बिना बेंट की कुल्हाड़ियां हैं, कुछ चर्मकर्षकास्त्र याने स्क्रेपर हैं और कुछ औजारों के अनुपयुक्त टुकड़े मात्र हैं।

लघुपाषाणास्त्र

उत्तर पाषाणकाल में मनुष्य ने पाषाण के बढ़िया किस्म के बड़े बड़े औजार बनाने के साथ ही पैने और तेज धार वाले छोटे आकार के औजारों का भी निर्माण किया था जो देखने में तो बड़े ही अटपटे और बहुत छोटे प्रतीत होते हैं किन्तु उनसे मनुष्य अपने बहुत से काम साध लेता था। संग्रहालय में प्रदर्शित इन लघु पाषाणास्त्रों को भी चम्बल घाटी से प्राप्त किया गया है। ये छोटे छोटे औजार अकीक तथा दूसरे सफेद पत्थरों जैसे चालकेडोनी के बनाये हुये हैं। इन में से कुछ तो चाकू के फल जैसे लम्बे हैं, कुछ ल्युनेट्स हैं और कुछ फ्लूटेड कोर (अनुपयुक्त खण्ड) हैं। इनके प्राप्तिस्थान चम्बलघाटी के वे ग्राम हैं जो चालकोलिथिक और मैसोलिथिक काल की सभ्यता के केन्द्र हैं यथा; आवरा, पसेवा, शंखोद्धार, बिलोली, बोरखंडी, संजीत, खड़ावड़ा आदि आदि।

ताम्रयुगीन औजार (चित्रफलक तीन-ख)

पाषाणयुग के बाद जब मनुष्य को तांबे जैसी धातु का पता लग गया तो वह अपने उपयोग के औजारों को तांबे से ही बनाने लगा क्योंकि वे पत्थरों के औजारों की अपेक्षा कहीं

अधिक टिकाऊ और उपयोगी थे। ताम्रयुग के औजार देश के विभिन्न भागों में बहुत संख्या में प्राप्त हुये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि एक युग ऐसा था जब तांबे के ही औजार बनाये जाते थे। इस युग के जो औजार संग्रहालय में प्रदर्शित हैं, वे ईस्वी सन १८७० में बालाघाट जिले के गुंगेरिया नामक स्थान में अनायास प्राप्त उस बड़े दफीने में से कुछ हैं जिसमें कुल मिलाकर ४२४ तांबे के औजार तथा १०२ चांदी के आभूषण मिले थे। इन औजारों में से कुछ चपटे सब्बल के आकार के हैं, कुछ विभिन्न प्रकार की बेंट या बिना बेंट वाली कुल्हाड़ियां हैं और एक कुल्हाड़ी ऐसी है जिसका आकार फरसी जैसा है।

बृहत्पाषाणकालीन शवस्थान

ताम्रयुग के पश्चात जब लौहयुग आया तो उसके प्रारंभिक काल में मुर्दे गाड़ने के लिये बड़ी बड़ी चट्टानों के आवास बनाये जाने की प्रथा चली। इन आवासों पर कहीं कहीं चट्टानों के बड़े बड़े छत डाल दिये जाते थे और कहीं शवस्थान के चारों ओर बड़ी बड़ी चट्टानों की दीवाल का घेरा खड़ा कर दिया गया था। इन शवस्थानों में मुर्दे के साथ उसके दैनिक उपयोग की वस्तुएं भी गाड़ी जाती थीं जैसे उसके उपयोग के मिट्टी के बरतन, अस्त्र, आदि आदि। बस्तर जिले की कुछ जनजातियों में इस प्रकार मुर्दे गाड़ने और उसके चारों ओर पत्थरों की दीवाल बनाने की प्रथा आज भी विद्यमान है।

रायपुर जिले में धमतरी के निकट धनोरा नामक स्थान में उपरोक्त प्रकार के बहुत से शवस्थान बिखरे हुये हैं जिनमें से कुछेक बड़े शवस्थानों की खुदाई करने पर उन में हड्डियों के टुकड़े, मनके, कांच की चूड़ियों के टुकड़े और तांबे के एक पात्र के खण्डित भाग प्राप्त हुये हैं। वे संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

सोमवंशियों के समय की प्रतिमाएं

मगध के गुप्त साम्राज्य के शिथिल पड़ जाने पर दक्षिण कोसल अर्थात आधुनिक छतीसगढ़ में अनेक छोटे छोटे राजवंशों का उदय हुआ जिसमें से सर्वाधिक प्रतापी होने के कारण सोमवंशी लोग, जिन्हें पाण्डुवंशी भी कहा जाता है, अपने राज्य को सुदृढ़ और समृद्ध रूप में स्थिर कर सके थे। इस वंश की राजधानी श्रीपुर (आधुनिक सिरपुर, जिला रायपुर) में स्थापित थी जिसे उन लोगों ने शरभपुरीय वंश को जीत कर उनसे छीन लिया था। सोमवंशियों के समय में छतीसगढ़ में अनेक भव्य मंदिरों और कलापूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। सिरपुर स्थित लक्ष्मण मंदिर उनकी कला का सर्वोत्तम नमूना है जो ईटों का बना हुआ है। इस वंश के राजा महाशिवगुप्त बालार्जुन के लम्बे राज्यकाल में राजधानी श्रीपुर तथा अन्य स्थानों में शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैन मंदिरों का निर्माण हुआ था जो उस की धर्मसहिष्णुता के ज्वलंत प्रमाण हैं। सोमवंशियों की कला का प्रतिनिधित्व संग्रहालय की नीचे वर्णित प्रतिमाएं करती हैं।

ध्यानी बुद्ध

अशोक वृक्ष के नीचे बुद्ध ध्यानावस्था में पद्मासन बैठे हैं। प्रतिमा छोटी है किन्तु उस पर ९ वीं शताब्दी ईस्वी के अक्षरों में एक लेख उत्कीर्ण है।

मंजुश्री (चित्रफलक चार-क, ख)

बौद्ध परंपरा में मंजुश्री को विद्या और ज्ञान का अधिष्ठाता देव माना जाता है। मंजुश्री की दो प्रतिमाएं संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। एक पीले रंग के बलुवा पत्थर की है और दूसरी हरे रंग के मुलायम पत्थर की। दूसरी प्रतिमा आकार प्रकार में बहुत ही छोटी है पर उसकी कला उच्च कोटि की है। उस में मंजुश्री ललितासन में व्याख्यानमुद्रा में बैठे हुये हैं। पीले पत्थर की बनी प्रतिमा में मंजुश्री पद्मासनासीन हैं, उनके तन पर यज्ञोपवीत और गले में हार पड़ा है जिसमें बघनखा जड़े हैं; बायें हाथ में पुस्तक है जो मंजुश्री का विशेष लक्षण है।

पार्श्वनाथ (चित्रफलक पांच-क)

तेईसवें जैन तीर्थंकर की पद्मासन में ध्यानस्थ अवस्था की यह सोमवंश कालीन प्रतिमा सिरपुर से प्राप्त की गई है जो बड़ी ही मनोहर है। तीर्थंकर के मस्तक पर सप्तफण वाले सर्प ने अपने सातों फनों को फैलाकर छत्र जैसा तान दिया है।

कल्याणसुंदरमूर्ति

शिव और पार्वती के विवाह का दृश्य बताने वाली प्रतिमाओं को कल्याणसुंदरमूर्ति कहा जाता है। संग्रहालय में प्रदर्शित कल्याणसुंदरमूर्ति पीले रंग के बलुवा पत्थर की बनी है और

रतनपुर (जिला बिलासपुर) से प्राप्त हुई हैं। इस प्रतिमा के अत्यत खराब हो जाने पर भी विभिन्न देवताओं और गणों की उपस्थिति में शिव पार्वती के विवाह का दृश्य सुस्पष्ट है। शिव और पार्वती एक दूसरे के सामने खड़े हैं और शिवजी अपने दायें निचले हाथ से पार्वती जी का हाथ ग्रहण कर रहे हैं। पट्ट के ऊपरी हिस्से में साक्षी रूप में विभिन्न देवगण खड़े हैं और नीचे अग्नि कुण्ड के समीप ऊंची चौकी पर ब्रह्मा बैठे हैं जो विवाह के पुरोहित का काम कर रहे हैं।

शिवमंदिर का द्वार

यह धमतरी, जिला रायपुर से प्राप्त हुआ है। शिवमंदिर की इस चौखट में दो पाखों पर स्थित आड़े करगहने पर एक आड़ी ही सोहावटी रखी हुई है जिसके मध्य भाग में शिव की अर्ध-प्रतिमा है। उसके सामने नन्दी है और दोनों ओर हाथ जोड़े हुये एक एक नाग खड़ा है। फिर दोनों ओर दो दो नागपुरुष हैं जिनके मस्तक पर तीन फन हैं। इन सभी नागों की दुमें लम्बी और आपस में गुंथी हुई हैं।

नागराज

नागराज की दो स्वतंत्र प्रतिमाएं दीर्घा में प्रदर्शित हैं जिनमें उन का शरीर मानवाकार है किन्तु मस्तक के ऊपर सात फनों वाला छत्र है। नागराज के हाथ में पुष्पमाला है और उनके तन पर हार, यज्ञोपवीत तथा अन्य आभूषण हैं।

सोमवंशियों के समय का देवकूट से प्राप्त स्तंभ तथा उसी प्रकार मल्लार से प्राप्त एक दूसरा स्तंभ, दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। मल्लार वाले स्तंभ पर ईहामृग, कीचक, पक्षी और बेलें बनी हैं। देवकूट से प्राप्त स्तंभ की चौकी पर लतापत्र, कमल, कलश आदि अलंकरण, दण्डभाग पर परस्पर गुंथे नाग और शीर्षभाग पर बेलबूटे और लतापत्रों से युक्त मंगलकलश बने हैं।

कलचुरिकालीन प्रतिमाएं

उत्तर मध्य काल में कलचुरि राजवंश की दो शाखाएं मध्यप्रदेश में राज्य करती थीं। पहली शाखा जिसे मुख्य शाखा या त्रिपुरी की शाखा कहते हैं, जबलपुर कमिश्नरी तथा रीवां कमिश्नरी के बघेलखंडीय भाग में अपने साम्राज्य का विस्तार किये हुये थी। दूसरी शाखा जो कि पहली शाखा की लहुरी शाखा थी, छत्तीसगढ़ में स्थापित थी। उसने त्रिपुरी की शाखा से फूटकर पहले बिलासपुर जिले में तुम्माण में अपनी राजधानी स्थापित की और बाद में उसी जिले में रत्नपुर नामक नगर बसाकर अपनी राजधानी वहां हटा ली। त्रिपुरी के कलचुरियों का राज्य जितने प्रदेश पर विस्तृत था उसे डाहलमण्डल कहा जाता था जबकि रत्नपुर के कलचुरि दक्षिण कोसल के पुराने प्रदेश के अधिपति थे। इस वंश की दोनों ही शाखाओं के समय में अनेक बड़े बड़े और प्रसिद्ध मंदिरों का निर्माण हुआ। जहां एक ओर त्रिपुरी शाखा के यश की गौरवगाथा के रूप में भेड़ाघाट के चौंसठ जोगनी और गौरीशंकर मंदिर तथा नोहटा, अमरकंटक और सोहागपुर आदि के स्थानों के सुन्दर मंदिर खड़े हुये हैं, वहीं दूसरी ओर छत्तीसगढ़ के विभिन्न स्थानों, जैसे शिवरीनारायण, जांजगीर, आरंग, आदि आदि स्थानों के मंदिर रत्नपुर की कलचुरि शाखा के कलाप्रेम के अद्‌भुत नमूने हैं।

(१) त्रिपुरी शाखा की कलाकृतियां

कलचुरियों की त्रिपुरी शाखा की कला का प्रतिनिधित्व संग्रहालय दीर्घा में प्रदर्शित वे प्रतिमाएं करती हैं जो कारीतलाई और बिलहरी से अवाप्त की गई हैं। इन में से अनेक काफी ऊंची हैं और खंडित हो चुकने पर भी अपने सौंदर्य की झांकी प्रस्तुत करती हैं।

ऋषभनाथ

ऋषभनाथ जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थंकर हैं इसलिये उन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है। इन्होंने घोर तपस्या कर के केवलज्ञान प्राप्त किया था। तपश्चर्या के काल में इन्हें शरीर की तनिक भी चिन्ता न थी, उनके केश बढ़ कर कंधों पर लहराने लगे थे इसलिये ऋषभनाथ की बहुत सी प्रतिमाओं में उनके केशगुच्छ कंधों पर लटकते हुये दिखाये जाते हैं विशेषकर प्राचीन प्रतिमाओं में जहां लांछन के अभाव में भी ऋषभनाथ को केवल कंधों पर लटकने वाले केशगुच्छ के द्वारा पहचान लिया जाता है। जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं अष्टप्रातिहार्ययुक्त बनाई जाती हैं। उन के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल और मस्तक के ऊपर तीन छत्र होते हैं। तीर्थंकर को अशोकवृक्ष के नीचे बैठा अंकित करते हैं तथा उनके परिचारक के रूप में एक ओर सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र और दूसरी ओर ईशान स्वर्ग के इन्द्र खड़े रहते हैं।

ऋषभनाथ का लांछन बैल है जो अकसर उनकी प्रतिमाओं के साथ बनाया जाता है। इनका शासनयक्ष गोमुख और शासनयक्षी चक्रेश्वरी है। वे दोनों ही यथा नाम तथा रूप हैं, गोमुख का मुख बैल जैसा होता है और चक्रेश्वरी अपने हाथों में चक्र लिये रहती है।

द्विमूर्तिका प्रतिमाएं

संग्रहालय की दीर्घा में अनेक जैन द्विमूर्तिका-प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं। ये जबलपुर जिले के कारीतलाई नामक ग्राम से लाई गई हैं। इन में से प्रत्येक में दो दो तीर्थंकर कायोत्सर्ग आसन में ध्यानमुद्रा में खड़े हैं। उनकी दृष्टि उनके नासाग्रभाग पर स्थित है। इन द्विमूर्तिका-प्रतिमाओं में तीर्थंकर के साथ अष्ट प्रातिहार्यों के अलावा तीर्थंकर का लांछन और उनके शासन देवताओं की प्रतिमाएं भी हैं। द्विमूर्तिका प्रतिमाओं में से अजितनाथ और संभवनाथ की द्विमूर्तिका लाल बलुवा पत्थर की बनी है और उसकी ऊंचाई १३८ से० मी० है जबकि अन्य तीर्थंकरों, यथा ऋषभनाथ और अजितनाथ, पुष्पदन्त और शीतलनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ तथा मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ की द्विमूर्तिकाएं सफेद बलुवा पत्थर की हैं जिनकी ऊंचाई १०७ से० मी० है।

पार्श्वनाथ

पार्श्वनाथ जैनों के तेईसवें तीर्थंकर हैं। ये काशी के राजकुमार थे किन्तु संसार की दशा देखकर वैराग्य हो जाने से राजमहल और राजपाट दोनों को ही त्याग कर महान अपरिग्रही बन आत्मसाधना करने जंगल को चल दिये थे। इन्हें अपनी घोर तपस्या के बीच भयंकर उपसर्गों का सामना करना पड़ा था जिसमें सफल होकर ये अर्हत् बने। चरमशरीरी पार्श्वनाथ पर कमठ नामक दैत्य ने अपनी पूर्व जन्म की शत्रुता के कारण तरह तरह के उपसर्ग किये थे। वह भी उस समय जबकि वे आत्मसाधता में लीन होकर ध्यान में मग्न थे। कमठ ने अपनी माया से उन के ऊपर पत्थर गिराये, घोर वर्षा की तथा इसी प्रकार के और भी उपद्रव किये किन्तु पार्श्वनाथ पर उन सब का कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे अपने ध्यान में ही मग्न रहे। कमठ के उन उत्पातों का ज्ञान जब नागों के देवता धरणेन्द्र को हुआ तो वे पद्मावती के साथ तीर्थंकर की रक्षा करने घटनास्थल पहुंचे। ये दोनों शक्ति में कमठ से अधिक बढ़ चढ़ कर थे किन्तु तीर्थंकर के सेवक इन देवों ने कमठ को कोई दण्ड न देकर उसका मानसिक परिवर्तन करने का मार्ग अपनाया। उनमें से एक ने तो पार्श्वनाथ को अपने मस्तक पर उठा लिया और दूसरे ने अपना विशाल फन फैलाकर उसे पार्श्वनाथ के मस्तक पर छत्र जैसा तान दिया जिससे कमठ के सारे प्रयत्न निष्प्रभाव हो गय और वह हार मानकर भाग गया। कठोर उपसर्गों की झड़ी सहकर पार्श्वनाथ की आत्मा परम शुद्ध हो गई और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस घटना की स्मृति में पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं में उनके मस्तक पर सांप के फन का छत्र दिखाया जाता है।

महावीर (चित्रफलक पांच-ख)

महावीर स्वामी जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर हैं। ये बुद्ध के समकालीन और ज्ञातृवंश के राजकुमार थे। तीस बरस की अवस्था में उन्होंने घर बार छोड़ा और बारह वर्ष की कठोर तपस्या के अनंतर केवल-ज्ञान प्राप्त किया। महावीर अपने पूर्वभव में सिंह थे इसलिये उनका लांछन भी सिंह ही हुआ। संग्रहालय की दीर्घा में प्रदर्शित महावीर की प्रतिमा सफेद बलुवा पत्थर की है। उस में महावीर ऊंचे सिंहासन पर उत्थित पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे हुये हैं। उनके केश घुंघराले और उष्णीषबद्ध हैं तथा छाती पर श्रीवृक्ष चिह्न है।

सर्वतोभद्रिका

इस शिखराकार शिल्प में चारों ओर एक एक तीर्थंकर की पद्मासन में स्थित प्रतिमा है। इस प्रकार की प्रतिमाओं को किसी भी ओर से देखने पर तीर्थंकर के दर्शन हो जाते हैं इसलिये इन्हें सर्वतोभद्रिका प्रतिमा कहते हैं। प्रस्तुत सर्वतोभद्रिका में ऋषभनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर, इन चार तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं।

सहस्रजिनबिम्ब

ग्रन्थालय के सामने के बरामदे में स्तंभाकृति शिल्प प्रदर्शित हैं जिनमें बहुत सी छोटी छोटी जिन प्रतिमाएं बनी हुई हैं। यद्यपि इन छोटी छोटी प्रतिमाओं की संख्या गिनी जा सकती हैं किन्तु वे हजार प्रतिमाओं की अभिव्यक्ति के लिये ही इस प्रकार शिल्पखंड के चारों ओर बनाई गई हैं। ये उस जिनमंदिर का संकेत करती है जिसमें सहस्रकूट हैं और जिसके प्रत्येक कूट में एक एक प्रतिमा स्थापित है।

अम्बिका या आम्रादेवी (चित्रफलक छह-क)

अम्बिका बाईसवें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षी है। संग्रहालय दीर्घा में इस देवी की दो प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं, एक में वह सिंह के ऊपर ललित आसन में बैठी है और दूसरी में आम के पेड़ के नीचे खड़ी हुई है। अम्बिका की प्रतिमाओं में उसके दो लड़के, शुभंकर और प्रियंकर भी उसके साथ बनाये जाते हैं। छोटा बालक अक्सर मां की गोद में रहता है और बड़ा उसके बगल में।

शिव (चित्रफलक छह-ख)

शिव की प्रतिमाएं जटाजूटयुक्त बनाई जाती हैं जिस पर कभी कभी चंद्रमा और गंगा भी रहती है। संग्रहालय में शिव की विभिन्न प्रकार की कई प्रतिमाएं हैं जिनमें उनके चार हाथ हैं। शिव का वाहन नन्दी अक्सर प्रत्येक प्रतिमा पर उनके साथ ही बनाया जाता है।

भैरव

भैरव का रूप भयंकर होता है और उनके हाथों में खप्पर, घण्टा, डमरू आदि भयानक आयुध होते हैं। भैरव का वाहन कुत्ता है जो कि संग्रहालय में प्रदर्शित भैरव प्रतिमा में स्पष्ट देखा जाता है।

तपस्या करती पार्वती

लाल बलुवा पत्थर की बनी एक प्रतिमा में पार्वती पद्मासन में बैठी पंचाग्नि तपस्या कर रही हैं। शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिये पार्वती को घोर तपश्चर्या करनी पड़ी थी, यह प्रतिमा उन की उसी अवस्था को दिखाती है। पार्वती के केश जटाओं जैसे बंधे हैं। उनके चारों ओर अग्निकुण्ड हैं। चारों ओर चार अग्निकुण्ड और पांचवीं अग्नि स्वयं सूर्य, इस प्रकार पंचाग्नि तप करके पार्वती शिव को प्रसन्न कर सकीं थीं।

विष्णु

विष्णु की प्रतिमाएं मुख्यतः स्थानक, ध्यानी और शेषशय्या, इन तीन आसनों में प्राप्त होती हैं किन्तु संग्रहालय में उन की ललित आसन में बैठी हुई भी एक प्रतिमा है। संग्रहालय की दीर्घा में प्रदर्शित विष्णु प्रतिमाओं में विष्णु की विभिन्न मूर्तियों यथा, नारायण, गोविन्द, मधुसूदन, हृषीकेश, आदि का प्रतिनिधित्व है। विष्णु के चार हाथों में चार आयुध शंख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं। इन आयुधों का क्रम बदलता रहता है और तदनुसार विष्णु की विभिन्न मूर्तियों का निर्माण होता है। किरीटमुकुट विष्णु की विशेषता है; उसी प्रकार उन की छाती पर श्रीवत्स चिह्न और गले में वैजयन्ती माला पड़ी रहती है।

त्रिविक्रम

विष्णु के त्रिविक्रम रूप की प्रतिमाओं में उनका एक पैर ऊपर की ओर उठा रहता है और आयुधों के धारण करने का एक विशेष क्रम होता है। संग्रहालय की एक त्रिविक्रम प्रतिमा में विष्णु सम्मुख खड़े हैं किन्तु उनका पैर ऊपर की ओर उठा हुआ नहीं है। केवल आयुधों के क्रम से ही उनकी पहिचान होती है।

वामन

विष्णु के वामन रूप की प्रतिमाएं ठिगने कद की बनाई जाती हैं। कभी कभी वामन के मस्तक पर शिखा भी रहती है।

नृसिंह (चित्रफलक सात-ख)

नृसिंह की दो प्रतिमाएं संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। लाल बलुवा पत्थर की पहली छोटी प्रतिमा में नृसिंह हिरण्यकशिपु को अपनी जांघ पर लिटाकर उसका पेट चीर रहे हैं। दूसरी

प्रतिमा जो सफेद बलुवा पत्थर की है, खंडित है। वह बड़ी विशाल और प्रभावपूर्ण है। अपनी पूर्ण अवस्था में उसकी पूरी ऊंचाई ८–९ फुट रही होगी। दो खंडों में प्राप्त इस नृसिंह प्रतिमा में नृसिंह का विशाल और रोबीला मुख, बड़ी बड़ी भौंहें और विस्फारित विकराल नेत्र बड़े प्रभावक हैं। नृसिंह की पीठ पर लहराती अयाल सुन्दर एवं स्वाभाविक ढ़ंग से बनाई गई है। नृसिंह के गले में पड़ा रत्नजटित हार कारीगरी का सुन्दर नमूना है। प्रतिमा के दूसरे खंड में चौकी पर नृसिंह का एक पैर रखा हुआ है जिसमें सुन्दर आभूषण हैं। सामने की ओर नृसिंह की शक्ति नारसिंही खड़ी है जिसके बारह हाथ हैं।

योगनारायण

विष्णु की ध्यानावस्था की प्रतिमा में वे पद्मासन में ध्यानस्थ बैठे हुये हैं।

गरुड़नारायण

गरुड़ पर बैठे विष्णु की दो प्रतिमाएं दीर्धा में प्रदर्शित हैं। दोनों ही लाल बलुवा पत्थर की बनी हैं। विष्णु के मस्तक पर किरीट मुकुट और उनके तन पर अन्य आभूषण हैं। गरुड़ की आकृति मनुष्य जैसी है और वह भी विभिन्न आभूषण धारण किये हुये है।

ब्रह्मा (चित्रफलक आठ-क)

लम्बी दाढ़ी, पगड़ी, हाथ में पुस्तक और चतुर्मुख होना ब्रह्मा की विशेपता है किन्तु संग्रहालय में प्रदर्शित उन की प्रतिमा में केवल एक ही मुख है। उन के हाथों में अमृतघट, शूल और पुस्तक है और तन पर यज्ञोपवीत पड़ा है।

सूर्य

सात घोड़ों के रथ पर सवार सूर्य सम्मुख खड़े हैं। प्रतिमा खंडित है। सूर्य कवच, यज्ञोपवीत और पैरों में लम्बे ऊंचे बूट पहने हैं। उन के हाथ में कमल हैं।

(२) रत्नपुर के कलचुरियों के समय की प्रतिमाएं

बुद्ध (चित्रफलक नौ-क, ख)

सिरपुर की खुदाई में ११-१२ वीं शताब्दी की बौद्ध प्रतिमाएं प्राप्त हुई थीं जिन में से कुछ संग्रहालय में प्रदर्शित की गई हैं। ये प्रतिमाएं आकार में छोटी हैं पर कई पर शिलालेख हैं। एक प्रतिमा में बुद्ध वरदमुद्रा में बैठे हुये हैं। उनके मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है। दूसरी प्रतिमा में बुद्ध बीच में खड़े हैं और उनके एक ओर अवलोकितेश्वर तथा दूसरे ओर तारा खड़ी है।

उमामहेश्वर (चित्रफलक आठ-ख)

उमामहेश्वर प्रतिमाओं में शिव और पार्वती ललितासन में बैठे दिखाये जाते हैं तथा पार्वती शिव की बांयीं जांघ पर बैठती हैं। रतनपुर से प्राप्त जो उमामहेश्वर प्रतिमा संग्रहालय में प्रदर्शित है वह कड़े काले पत्थर की है। उस में शिव के हाथों में त्रिशूल, मातुलुंग और नाग हैं तथा चौथा हाथ पार्वती की पीठ की तरफ से आकर पार्वती के स्तन का स्पर्श कर रहा है। उसी प्रकार पार्वती के हाथों में दर्पण, पोथी और कमल हैं तथा एक हाथ शिव के गले में पड़ा है।

कार्तिकेय

कार्तिकेय देवताओं के सेनापति हैं। उनका वाहन मयूर है। कार्तिकेय के छह मुख होने से वे षडांनन भी कहलाते हैं। दीर्घा में प्रदर्शित कार्तिकेय प्रतिमा बिलासपुर जिले के गोमरी नामक गांव से प्राप्त की गई है। इसमें कार्तिकेय के बारह हाथ हैं, जिनमें वे वज्र, खड्ग, शूल, धनुष, ताम्रचूड आदि आयुध धारण किये हुये हैं।

स्थानक विष्णु (चित्रफलक एक)

संग्रहालय में कलचुरि कला का प्रतिनिधित्व करने वाली समस्त प्रतिमाओं में सर्वोत्तम प्रतिमा हैं काले पत्थर की बनी विष्णु की स्थानक आसन की प्रतिमा जो बिलासपुर जिले के रतनपुर नामक ग्राम से अवाप्त की गई है। इस प्रतिमा में विष्णु सम्मुख खड़े हैं। उन के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है जिसके दोनों ओर दो दो गंधर्व पुष्पमालाएं लिये उड़ते दिखाई देते हैं। विष्णु ने अनेक आभूषण पहन रखे हैं। उन की छाती पर श्रीवत्स लांछन तथा गले में वैजयन्ती माला है। विष्णु की प्रतिमाएं चतुर्भुज होती हैं और उनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म ये चार आयुध रहते हैं। किन्तु प्रस्तुत प्रतिमा के दाहने ओर के दोनों हाथ खण्डित हैं। बायें ओर के ऊपर के हाथ में चक्र और निचले हाथ में गदा है। मूलनायक प्रतिमा के तीन तरफ की पट्टियों पर दशावतार की प्रतिमाएं हैं जो दायें ओर नीचे से प्रारंभ होती हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैः—मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम, बलराम, बुद्ध और कल्कि। विष्णु की परिचारिकाएं उनके दोनों तरफ स्थित छोटे छोटे स्तंभ पर त्रिभंगमुद्रा में खड़ी हैं। वे क्रमशः श्री और भू हैं। प्रतिमा पर जो शिलालेख खुदा है उसमें प्रतिमा का दान करने वालों के नाम पढ़े जाते हैं।

राजपुरुष

रतनपुर के कलचुरि राजाओं के समय में राजा, रानी, मंत्री और अन्य उच्च अधिकारी अपनी अपनी प्रतिमाओं का भी निर्माण कराने लगे थे। ऐसी प्रतिमाओं के निर्माण कराने का केवल यह उद्देश्य होता था कि निर्माता की स्मृति चिरस्थायी रहे। मंदिरों का निर्माण कराने वाले

अपनी प्रतिमाएं बनवाकर इष्ट देवता के भक्त रूप में उन के सम्मुख खड़ी कर देते थे। संग्रहालय में प्रदर्शित प्रस्तुत प्रतिमा किसी राजपुरुष की प्रतिमा है जिसमें वह हाथ जोड़े हुये बैठा है। उसके हाथों के बीच कमलपुष्प है। वह मुकुट तथा अन्य विविध आभूषण धारण किये हुये है। उसकी दाढ़ी लम्बी है। उसके मस्तक के पीछे प्रभामण्डल और मस्तक के ऊपर छत्र आदि हैं।

मूर्तिपट्ट

सिरपुर की खुदाई में अनेक ऐसे छोटे छोटे शिलापट्ट मिले थे जिन पर विभिन्न हिन्दू देवताओं, जैसे विष्णु, शिवपार्वती, दुर्गा, गणेश, सूर्य आदि की छोटी छोटी प्रतिमाएं हैं। ये पट्ट १२ वीं शताब्दी में कलचुरि राजाओं के राज्यकाल में निर्मित किये गये थे। इन में से कुछ पट्ट संग्रहालय के पुरातत्त्व उपविभाग में प्रदर्शित हैं। उन के साथ शिवलिंग की एक जलहरी भी प्रदर्शित है जो उसी काल की है।

विभूतिपट्ट

पवित्र राख रखने के लिये कलचुरिकालीन मंदिरों में विशेषकर शैव मंदिरों में एक प्रकार के विभूतिपट्टों का उपयोग होता था जो पूजा के समय जमीन पर रख लिये जाते थे। सिरपुर की खुदाई में प्राप्त ऐसे कुछ विभूतिपट्ट संग्रहालय में प्रदर्शित किये गये हैं जिन में से कुछ चोकोर हैं और कुछ गोल। इन पर तरह तरह के सुंदर अलंकरण बने हुये हैं और हाथी, बैल, मछली, पक्षी, कमल, शंख आदि मांगलिक आकृतियां हैं।

गोंड़कालीन प्रतिमाएं

गोंड़ सरदार (चित्रफलक दस-ख)

गोंड़कालीन प्रतिमाओं की संख्या संग्रहालय में कम ही है किन्तु जो कुछ भी यहां प्रदर्शित है, वे तत्कालीन लोकजीवन और वेशभूषा आदि के संबंध में अनेक प्रकार की जानकारी देती हैं। गोंड़ योद्धाओं और सिपाहियों की प्रतिमाएं गोंड़ों के तत्कालीन जीवन और रहन सहन पर प्रकाश डालती हैं। एक प्रतिमा में गोंड़ योद्धा घोड़े पर सवार है। वह चुस्त पायजामा पहने हैं, उसके जूते, शिरस्त्राण, आदि पर मुसलमानी प्रभाव स्पष्ट है, मूंछें भी उसी प्रकार की हैं। योद्धा जो कि कोई सरदार जान पड़ता है, बायें हाथ से घोड़े की लगाम पकड़े हुये है। उसकी कमर में बंधे फेंटे में एक कटार खोंसी हुई है। सरदार की तलवार उसके घुटने पर रखी है। उस का एक अनुचर छत्र लिये पीछे पीछे चल रहा है और आगे एक सिपाही चला जा रहा है जो ढ़ाल और भाला लिये है। तीसरा अनुचर कंधे पर कांवर लिये है जिसमें सरदार के लिये भोजन सामग्री और जलपात्र है। दूसरे गोंड सरदार की प्रतिमा पहले के ही समान है पर उसके बायें हाथ में चाबुक है और बायें ही घुटने पर ढाल रखी है। दूसरे के घोड़े के साथ साथ एक कुत्ता दौड़ रहा है जिसके दोनों ओर एक एक चाकर है। गोंड़ योद्धाओं की उपरोक्त प्रतिमाओं के अलावा गोंड़ सिपाहियों की भी दो प्रतिमाएं संग्रहालय की दीर्घा में प्रदर्शित हैं। इन में से एक ढ़ाल लिये बायें दौड़ा जा रहा है जिसके फेंटे में कटार खोंसी हुई है। दूसरा सिपाही भी पैदल है और वह दायें हाथ में तलवार तथा बायें में ढ़ाल लिये भाग रहा है।

सती स्मारक स्तंभ

यह स्मारक स्तंभ रायपुर जिले में प्राप्त हुआ था। इसकी चौकी तो सादी और चौकोन है पर उस पर स्थित दण्ड पर एक सिंह और एक कीर्तिमुख बना है। चौकोन शीर्षभाग पर कमल तथा अन्य बेलबूटे हैं। सब से ऊपर का भाग अण्डाकार है जिसके सामने के हिस्से में दो हाथ दिखाई पड़ते हैं। ये हाथ दो भिन्न भिन्न स्त्रियों के हैं; इनमें चूड़ियां दिखाई देती हैं।

तीन बंदर (चित्रफलक-ग्यारह)

राजनांदगांव से प्राप्त बन्दरों की ये तीन प्रतिमाएं बड़ी महत्वपूर्ण प्रतिमाएं हैं क्योंकि ये भारत के पुराने आदर्श, 'बुरा मत कहो, बुरा मत देखो, और बुरा मत सुनो,' का संदेश दे रही हैं। इस प्रकार की प्रतिमाएं महात्मा गांधी को चीन से प्राप्त हुई थीं जिन्हें वे अपना गुरु कहते थे। प्रस्तुत प्रतिमाओं की प्राप्ति से यह ज्ञात होता है कि पुराने जमाने में भारतवर्ष में इस प्रकार की प्रतिमाओं का निर्माण बराबर होता रहा है।

धातु प्रतिमाएं

धातु प्रतिमा ढ़ालने की कला का ज्ञान भारतवासियों को प्रागैतिहासिक काल में भी था। सिंधु सभ्यता के प्रमुख नगर मोहेंजोदड़ो की खुदाई में धातु की एक नर्तकी प्रतिमा प्राप्त हुई थी। कुषाण और गुप्त काल में धातु की सुंदर से सुंदर प्रतिमाएं बनीं यहां तक कि गुप्तकाल में बनी बुद्ध की एक धातुप्रतिमा की ऊंचाई आदमकद है। गुप्तकाल के अनंतर धातुप्रतिमाओं के निर्माण में लगातार वृद्धि होती गई और गुप्तकाल का अनुकरण करते हुये देश के विभिन्न स्थानों के धातुकारों ने भारी संख्या में धातुप्रतिमाओं का निर्माण किया। पूर्व भारत में नालंदा, उत्तर में नेपाल, दक्षिण में नागपट्टनम् और पश्चिम भारत में अकोटा आदि स्थानों से धातु की प्राचीन मूर्तियां बड़ी संख्या में प्राप्त हुई हैं। उसी प्रकार, दक्षिण कोसल में भी धातु-मूर्तियों के निर्माण के केन्द्र स्थापित थे जिनमें श्रीपुर (आधुनिक सिरपुर, रायपुर जिला) मुख्य है। सिरपुर से प्राप्त धातु प्रतिमाओं का समय ईस्वी सन की आठवीं और नौवीं शती आंका गया है। इन में से जो प्रतिमाएं संग्रहालय दीर्घा में प्रदर्शित हैं, वे सभी बौद्ध हैं किन्तु जैन धातु-प्रतिमाओं के भी सिरपुर से प्राप्त होने की सूचना मिली है। सिरपुर की धातु प्रतिमाओं की निर्माण शैली नालंदा की शैली से प्रभावित है। संभव है कि मगध की राजकुमारी वासटा के श्रीपुर के राजकुल में ब्याहे जाने से मगध की कला-शैली का दक्षिण कोसल की कला शैली पर प्रभाव पड़ा हो। यह भी संभव है कि दोनों ही केन्द्रों में एक सी शैली का विकास एक साथ और स्वतंत्र रूप से हुआ हो।

भारतवर्ष में बनने वाली अन्य धातु प्रतिमाओं के समान सिरपुर की धातु प्रतिमाएं भी ढ़लवां हैं। इन्हें खंड खंड में ढ़ालकर बाद में जोड़ा गया है। जैसे चौकी को अलग ढ़ाल कर और उसी प्रकार चौकी पर बैठी प्रतिमा को अलग ढ़ाल कर फिर उसे चौकी पर बिठा दिया गया। प्रतिमा के जटा-जूट, अलंकार, यज्ञोपवीत आदि भी अलग से बना कर अंगों में यथा स्थान बारीकी से जोड़ दिये गये हैं। यह हो चुकने पर प्रतिमा पर सोने का मुलम्मा, आंखों में चांदी का जड़ाव, बालों में काला रंग और ओठों पर तांबे की लाली चढ़ाई गई और सब से अन्त में आभूषणों में यथास्थान रत्न जड़े गये थे।

सिरपुर से प्राप्त बौद्ध धातु प्रतिमाओं का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है:—

बुद्ध (चित्रफलक बारह-क)

बुद्ध की तीन धातु प्रतिमाएं संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। उन में से दो तो भूमिस्पर्श मुद्रा की हैं और तीसरी वरद मुद्रा की। गौतम को जब बोधिलाभ हुआ तो उन्होंने अपने बुद्धत्व प्राप्त करने का साक्षी भूमि को बनाया था और भूमि को स्पर्श कर के कहा था कि मैं बुद्ध हो

गया। उस घटना के उपलक्ष्य में बुद्ध की भूमिस्पर्श मुद्रा की प्रतिमाएं बनाई जाती हैं। इस मुद्रा में बुद्ध का एक हाथ तो पद्मासन अवस्था में गोद में रखा रहता है और दूसरा नीचे लटक कर भूमि-स्पर्श का संकेत करता है। भूमिस्पर्श मुद्रा में स्थित पहिली धातु प्रतिमा में बुद्ध के मस्तक के पीछे स्थित प्रभामण्डल पर बारह दल का कमल तथा चतुर्दिक फैलती ज्वालाकृति किरणें हैं, बुद्ध के पीछे तोरणाकृति तकिया है जो दो खड़ी पट्टियों पर एक आड़ी पट्टी रखकर बनाया गया है। इस प्रतिमा के पीछे आठवीं नौवीं शती के अक्षरों में 'ये धर्मा हेतुप्रभवा' आदि बौद्ध बीजमंत्र उत्कीर्ण है। उसी प्रकार प्रतिमा के सिंहासन पर मूर्तिकार द्रोणादित्य का नाम उत्कीर्ण है। भूमिस्पर्श मुद्रा में स्थित दूसरी प्रतिमा में बुद्ध के माथे पर चांदी की ऊर्णाविन्दु है। समूची प्रतिमा की बनावट सादी होने पर भी प्रभामण्डल नये प्रकार का है जो अण्डाकार है और बुद्ध के सम्पूर्ण शरीर के पीछे फैला हुआ है।

वरद मुद्रा में स्थित बुद्ध प्रतिमा में बुद्ध की दायीं हथेली में कोई फल रखा हुआ है। इस प्रतिमा का प्रभामण्डल गोल किन्तु खण्डित है।

अवलोकितेश्वर

पद्मपाणि अवलोकितेश्वर की सिरपुर से प्राप्त चार धातु प्रतिमाएं संग्रहालय दीर्घा में प्रदर्शित हैं। सभी में वे ललितासन में बैठे हैं। उनके मस्तक पर जटामुकुट तथा तन पर अनेक रत्नजटित आभूषण हैं। पद्मपाणि की प्रतिमाओं में उन्हें एक हाथ में कमलदण्ड लिये हुये दिखाया जाता है जिसके शीर्ष भाग पर विकसित या अविकसित कमल रहता है। कुछ प्रतिमाओं पर पूर्वोक्त द्रोणादित्य का नाम उत्कीर्ण है।

वज्रपाणि (चित्रफलक बारह-ख)

संग्रहालय के संग्रह की धातु प्रतिमाओं में सर्वोत्कृष्ट प्रतिमा वज्रपाणि की है जिसमें बोधिसत्त्व सादी चौकी पर एक पर एक रखे कमल की कर्णिका पर ललित आसन में बैठे हुये हैं। उनका दायां हाथ वरदमुद्रा में दाहने घुटने पर आश्रित है और बायें हाथ में कमलनाल है जिसके सिरे पर मुकुल और सबसे ऊपर वज्र है। वज्रपाणि के तन पर विविध आभूषण शोभित हैं। इस प्रतिमा की विशिष्ट वस्तु है अलंकृत प्रभामण्डल जो वृत्ताकार है। प्रभामण्डल की पीठ पर बौद्धों का बीजमंत्र उत्कीर्ण है और चौकी पर द्रोणादित्य का नाम।

मंजुश्री

बौद्ध परंपरा के अनुसार मंजुश्री को विद्या और ज्ञान का अधिनायक माना गया है। उन की दो धातु प्रतिमाएं संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। दोनों में ही वे ललित आसन में कमल की कर्णिका पर बैठे हैं। इन के कान और गले के आभूषण ऊपर वर्णित बोधिसत्त्व प्रतिमाओं से भिन्न हैं। यथा इनके दायें कान में पत्र कुण्डल और बायें कान में टटांक कुण्डल हैं जबकि ऊपर वर्णित बोधिसत्त्वों के एक कान में मकर कुण्डल और दूसरे कान में किरीट कुण्डल सुशोभित

हैं। मंजुश्री के गले में मोतियों की माला है जिसके बीच में मध्यमणि और मध्यमणि के दोनों ओर एक एक व्याघ्रनख तथा पत्ररत्न हैं। पहली मंजुश्री प्रतिमा में बोधिसत्त्व के बायें हाथ में स्थित कमलनाल के सिरे पर पोथी भी दिखाई देती है; दूसरी प्रतिमा में पोथी वाला भाग खण्डित हो गया है किन्तु घुटने टेक कर पूजा करते हुए एक भक्त की प्रतिमा अधिक है।

तारा

महायानी बौद्ध लोगों में तारा देवी को बड़ा सम्मान प्राप्त है। संग्रहालय में इस देवी की एक धातु प्रतिमा प्रदर्शित हैं जिस में वह आम्र वृक्ष के नीचे कमल पर ललित आसन में बैठी हुई है। तारा की प्रभावली अण्डाकार है जिसकी पीठ पर बौद्ध बीजमंत्र उत्कीर्ण है।

उपरोक्त बौद्ध धातु प्रतिमाओं के अलावा संग्रहालय में एक विष्णु की और एक गौरी की धातु प्रतिमा प्रदर्शित है। विष्णु की प्रतिमा में वे सम्मुख खड़े हुये हैं किन्तु उनका मस्तक खण्डित हो गया है। यह प्रतिमा सिरपुर के निकटवर्ती फुसेरा नामक ग्राम के जंगल में प्राप्त की गई थी। इसलिये इसे सिरपुर केन्द्र की कलाकृति माना जा सकता है। गौरी की प्रतिमा बिलासपुर जिले के सलखन नामक ग्राम में अन्य धातु प्रतिमाओं के साथ प्राप्त हुई थी। निर्माण शैली के अनुसार गौरी की इस प्रतिमा को ९ वीं शती में रखा जा सकता है। इस में चौकी पर रखे कमल पर गौरी सम्मुख खड़ी है। उन के चार हाथ हैं जिन में वे कमल, अक्षसूत्र, दर्पण और कमण्डलु लिये हैं। गौरी के पीछे तोरणाकृति तकिया है जो कि दो खड़ी पट्टियों पर आड़ी पट्टी रखकर बनाया गया है। आड़ी पट्टी के ऊपर दाहने ओर शिवलिंग और बायें ओर गणेश की छोटी प्रतिमा हैं। गौरी के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है जिस पर अष्टदल कमल बना है। गौरी की परिचारिकाएं गंगा और यमुना, उनके साथ ही चौकी पर खड़ी हैं। दोनों नदी देवियों के वाहन क्रमशः मगर और कछुवा सामने दिखाई पड़ते हैं। उपरोक्त धातु प्रतिमाओं के अलावा गणेश की एक छोटी सी प्रतिमा जो नान्दौर खुर्द से प्राप्त हुई है तथा एक घण्टा जो उपरोक्त गौरी प्रतिमा के साथ ही प्राप्त हुआ था, दर्शनीय हैं।

मृण्मूर्तियां

संग्रहालय में प्रदर्शित मिट्टी की मूर्तियों में सबसे बड़ी और सबसे महत्वपूर्ण वह प्रतिमा है जिसमें बुद्ध धर्मप्रवचन मुद्रा में पद्मासन पर बैठे हुये हैं। उन के केश घुंघराले और उष्णीषबद्ध हैं तथा उन के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल है। यह प्रतिमा सिरपुर की खुदाई में प्राप्त हुई थी। सिरपुर की खुदाई में प्राप्त दूसरी मृण्मूर्तियों में हाथी, घोड़ा, भैंस, भेड़, हिरन, बैल और स्त्रियों की आकृतियां हैं। सबसे अधिक संख्या बैल की आकृतियों की है। ये बैल छत्तीसगढ़ में आजकल बनाये जाने वाले बैलों के ही समान है जो पोला के अवसर पर बनाये जाते हैं और बच्चे जिन से खेलते हैं। पीछे बताई गई जानवरों की सभी मृण्मूर्तियां कलचुरिकाल की अर्थात् १२ वीं शती ई० की हैं। (फलक तेरह-क)

पसेवा की खुदाई में प्राप्त मिट्टी के बैल तथा अन्य मृण्मूर्तियां भी विशिष्ट हैं जिन में से एक प्रतिमा किसी मादा बंदर की है जो अपने शिशु को छाती से लगाये हुये है।

मिट्टी के बरतन

पुरातत्त्व दीर्घा में आरंग, सिरपुर और कारीतलाई से प्राप्त आठवीं शती के लगभग की ईंटें प्रदर्शित हैं। वहीं इन्हीं स्थानों से प्राप्त प्राचीन मिट्टी के बरतनों के ठीकरे (टुकड़े) भी रखे गये हैं।

सबसे प्राचीन मिट्टी के बरतन वे हैं जो पसेवा की खुदाई में प्राप्त हुये हैं। ये बरतन रंग बिरंगे हैं। इनका समय लगभग २३०० ई० पू० है और ये चालकोलिथिक काल से संबंधित कहे जाते हैं। उसी प्रकार मानौती के चित्रित बरतन भी लगभग उतने ही पुराने हैं। ये बरतन लाल रंग के हैं और उन पर काले रंग से बनाई गई लहरदार रेखाएं हैं। आवरा, शंखोद्धार और बिलोरी से प्राप्त चालकोलिथिक युग के मिट्टी के बरतन भी इनके साथ प्रदर्शित हैं।

गुप्तकाल में अपने देश का व्यापार-संबंध विदेशों से बढ़ गया था। यहां से वस्तुएं बाहर जाती थीं और बाहर की वस्तुएं यहां आती थीं। पसेवा की खुदाई में गुप्तकाल के लगभग के चिकने लाल पालिसदार पतले बरतन प्राप्त हुये हैं जो भारतीय नहीं प्रतीत होते। इन बरतनों में टोंटीदार सुराही (फलक चौदह-क) तथा तरह तरह के प्याले सम्मिलित हैं।

सिरपुर की खुदाई में प्राप्त, ८ वीं शती ई० से लेकर १२ वीं शती ईस्वी तक के विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बरतन जैसे हण्डी, घड़े, दिये, कटोरे, छोटी छोटी थालियां आदि दीर्घा में प्रदर्शित किये गये हैं। इनके साथ बच्चों के खेलने की मिट्टी की गोलियां और बड़ों के उपयोग के हुक्का और चिलम जैसी वस्तुएं भी दर्शनीय हैं।

पत्थर और मिट्टी की मुद्राएं व मुद्रांक

प्राचीन काल में पाटल मुद्राएं या मिट्टी की मोहरें बनाने का रिवाज था। किसी कड़ी वस्तु, विशेषकर अकीक या गोमेद जैसे पत्थर या तांबे जैसी धातु के टुकड़ों पर अक्षर या मूर्ति वगैरः खोदकर उसकी छाप गीली मिट्टी पर निमुद्रित कर के ये मोहरें बनाई जाती थीं जिन्हें पकाया भी जाता था और कभी कच्चा ही रहने दिया जाता था। मूर्ति का आकार या लेख मिट्टी पर निमुद्रित हो चुकने पर मिट्टी के लोंदे को गोल अथवा अन्य इच्छित आकार देने के लिये हथेली पर रखकर अंगुली या हाथ से दबाकर वह आकार दिया जाता था।

पाटल मुद्राओं के संबंध में हर्षचरित में उल्लेख मिलता है। इनका उल्लेख दिव्यावदान और चचनामा में भी मिला है। ऐसी पाटल मुद्राएं नालंदा में बहुत संख्या में प्राप्त हुई हैं जिन पर वहां के बड़े बड़े विहारों के नाम लिखे मिले हैं।

संग्रहालय के मिट्टी की मोहरों के संग्रह में सबसे पुरानी मोहर राजा धनदेव की है जो वाराणसी की है। उस पर बैल की आकृति है तथा ब्राह्मी अक्षरों में राजा का नाम लिखा है। सिरपुर की खुदाई में भी मिट्टी की कई मुद्राएं मिली थीं, वे भी संग्रहालय की दीर्घा में प्रदर्शित हैं। इन में से कुछ मुद्राएं अण्डाकार हैं और कुछ थाली जैसी गोल। इनमें बुद्ध और वोधिसत्त्व की प्रतिमाएं बनी हैं तथा बौद्धों का बीजमंत्र 'ये धर्मा' आदि लिखा हुआ है। एक मुद्रा में बुद्ध भूमिस्पर्श मुद्रा में बैठे हैं, दूसरे में अवलोकितेश्वर त्रिभंगमुद्रा में खड़े हैं और तीसरी जो कि आकार में बड़ी है, उस पर अवलोकितेश्वर की बारहभुजी प्रतिमा है। ये सभी मुद्राएं ७ वीं-८ वीं शती की हैं। दूसरे प्रकार की मुद्राओं पर प्रतिमाएं नहीं है केवल मंत्र लिखा हुआ है। कुछ पर केवल 'ये धर्मा' आदि मंत्र और कुछ पर लम्बा धारिणी मंत्र। धारिणी मंत्र का लिखा जाना तत्कालीन तांत्रिक कर्मकाण्ड से संबंधित है। इस मंत्र युक्त मुद्राएं दो पल्लों में हैं जिन्हें आमने सामने रखकर जोड़ा गया है। इन मुद्राओं पर रुपये बराबर स्थान में सैकड़ों अक्षर लिखे गये हैं जिन्हें पढ़ना कठिन कार्य है।

मिट्टी की मुद्राओं के अलावा नन्नराज नामक राजा के नाम का पत्थर का एक मुद्रांक भी सिरपुर की खुदाई में प्राप्त हुआ है। वह भी मिट्टी की मुद्राओं के साथ शोकेस में प्रदर्शित है।

सिक्के

आज से लगभग २६०० वर्ष पूर्व से ही भारत में सिक्कों का चलन प्रारंभ हो चुका था जो दो प्रकार के थे एक तो शतमान और दूसरे कार्षापण। शतमान सिक्का १०० रत्ती वजन का होता था। उसके आधे, चौथाई और आठवें भाग के सिक्के क्रमशः अर्धशतमान, पादशतमान और पादार्धशतमान कहलाते थे। उसी प्रकार कार्षापण माला में भी अर्धकार्षापण, पादकार्षापण आदि सिक्के चालू थे। इनके अलावा चतुर्माषक, त्रिमाषक, द्विमाषक, एकमाषक और अर्धमाषक सिक्कों का भी उल्लेख हमारे प्राचीन साहित्य में मिलता है।

आहत सिक्के भारतवर्ष के सबसे प्राचीन सिक्के हैं। उन पर जो चिह्न बनाये जाते थे वे आहत या पंच कर के बनाये जाते थे इसलिये इन सिक्कों को आहत या पंचमार्क सिक्के कहा जाता जाता है। आहत सिक्कों का कोई एक प्रकार नहीं होता, वे गोल, चौकोर तथा अन्य आकार के मिलते हैं, उनमें से कुछ मोटे हैं और कुछ पतले, कुछ आकार में बड़े और दूसरे छोटे। किन्तु वजन में वे प्रायः एक से होते हैं। आहत सिक्के चांदी और तांबे दोनों धातुओं के मिलते हैं, उन पर तरह तरह के चिह्न पाये गये हैं जिनका एक विशिष्ट उद्देश्य प्रतीत होता है। महाकौशल में प्राप्त हुये आहत सिक्कों पर मिलने वाले चिह्नों का एक नकशा पुरातत्व दीर्घा में प्रदर्शित किया गया है। (फलक सोलह)

आहत सिक्कों के ठीक बाद और लगभग उन के साथ ही साथ उन सिक्कों का चलन हुआ जो ढाल कर बनाये जाते थे और जिन पर आहत सिक्कों के समान ही विभिन्न चिह्न होते थे किन्तु किसी प्रकार का लेख न होता था। इस प्रकार के ढलवां सिक्के प्रायः तांबे के ही मिलते हैं और स्थानभेद से इनसे चिह्नों में भी भेद पाया जाता है। तीसरी शती ई० पू० से सिक्कों पर लेख लिखे जाने लगे जिन में या तो केवल नगर का नाम होता था अथवा राजा का नाम।

यूनानियों के भारत प्रवेश के अनंतर यहां की मुद्रा प्रणाली ने नया रूप धारण किया और तब से सिक्कों पर राजा की प्रतिमा बनाई जाने लगी और लेख में राजा की उपाधि आदि का भी उल्लेख किया जाने लगा। पश्चात काल में राजा के नाम के साथ उसके पिता का नाम भी दिया जाने लगा और सिक्का ढाले जाने का संवत्सर भी। इस प्रकार के सिक्कों की प्राप्ति से राजवंशों की वंशावली और उन के राज्यकाल के निर्णय करने में बड़ी सहायता मिली है।

गुप्तकाल में भारतीय सिक्कों में एक नई क्रान्ति हुई। इस राजवंश ने क्रमशः पाश्चात्य प्रभाव को त्याग कर शुद्ध भारतीय ढंग के सिक्के चलाये, जो सोने, चांदी और तांबे,

तीनों धातुओं के मिलते हैं। गुप्तकालीन सिक्के न केवल कलापूर्ण प्रतिमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं अपितु उन पर संस्कृत छन्द में लेख मिलते हैं। छन्दोमय लेख गुप्तकालीन सिक्कों की अपनी विशेषता है। इसके अलावा कुछ गुप्त राजाओं ने दीनार की रूढ़ परम्परा का त्याग करके भारतीय तौल के अनुसार सुवर्ण नामक सिक्के का प्रचलन किया था।

गुप्त साम्राज्य के कमजोर पड़ जाने पर देश में अनेक स्थानीय राज्य बन गये जो अपने अपने सिक्के चलाते रहे। मध्यकाल में कलचुरि वंश के राजा गांगेयदेव ने पुनः सोने के सिक्के का रूप स्थिर किया और अपने नाम से सोने के सिक्के चलाये जिन पर एक ओर तो उसका नाम होता है और दूसरी ओर लक्ष्मी की प्रतिमा। गांगेयदेव द्वारा स्थिर किये गये इस नमूने को उत्तर भारत के प्रायः सभी मध्यकालीन राजवंशों ने अपनाया और नाम बदल बदल कर अपने अपने सोने के सिक्के जारी किये।

दिल्ली में सुलतानों का राज्य स्थापित हो जाने पर भारतीय मुद्रा ने एक और करवट ली। मूर्तिपूजा के विरोधी होने के कारण मुस्लिम शासकों ने सिक्कों पर प्रतिमाएं न बनाकर दोनों ओर लेख लिखवाये। इन लेखों में कलिमा के साथ साथ शासक का नाम, उसकी उपाधि और सन का उल्लेख होता है। मुगलों के समय में सोने के सिक्कों का काफी चलन हुआ तथा अकबर और जहांगीर जैसे लोकप्रिय बादशाहों ने लीक को तोड़कर कुछ ऐसे सिक्के भी जारी किये जिन पर प्रतिमाएं या आकृतियां बनाई गईं। उदाहरणार्थ अकबर के एक सिक्के पर धनुष लिये राम और उन के साथ सीता की प्रतिमा बनी मिलती है। उसी प्रकार जहांगीर के सिक्कों पर बारह राशियों की आकृतियां हैं। दुर्भाग्यवश वे दिन भी समाप्त हो गये और मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गई। स्थानीय राजवंश केवल नामचारे के लिये मुगल बादशाहों के नाम पर स्थानीय टकसालों में अपने अपने सिक्के ढ़ालते रहे और अपने अपने राज्य क्षेत्र में उन्हें चलाते रहे। ब्रिटिश शासन के स्थापित हो जाने पर भारतीय सिक्के का पुनः एक रूप स्थिर हुआ जिसका समूचे देश में उपयोग होने लगा।

संग्रहालय के सिक्कों के संग्रह में आहत सिक्कों से लेकर आधुनिक सिक्कों तक के नमूने विद्यमान हैं जिन में विभिन्न भारतीय राजवंशों का प्रतिनिधित्व है। थोड़े से विदेशी सिक्के भी संग्रह किये गये हैं। सुरक्षा की दृष्टि से सभी सिक्के तिजोड़ी में रखे जाते हैं किन्तु दर्शकों की सुविधा के लिये भारतीय सिक्कों के विभिन्न नमूनों की नकलें वीर्घा में प्रदर्शित की गई हैं।

ब्रिटिश काल में विभिन्न अवसरों पर जारी किये तमगों का एक छोटा सा संग्रह भी संग्रहालय में है।

उत्कीर्ण लेख

भारतीय इतिहास को श्रृंखलाबद्ध करने में उत्कीर्ण लेखों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। उन में प्राप्त विवरणों के आधार पर ही भारत के अनेक प्राचीन राजवंशों का इतिहास तथा उनके समय की मुख्य मुख्य घटनाओं का पता चला है। राजनैतिक घटनाओं के विवरणों को छोड़ देने पर भी उत्कीर्ण लेखों का महत्व कम नहीं होता क्योंकि उन में विभिन्न-कालीन धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और उद्योग आदि संबंधी सूचनाएं भी भरी हुई हैं। उदाहरणार्थ, अशोक के शिलालेखों में उस महान सम्राट के द्वारा सम्पन्न किये गये जन हित के कार्यों का लेखा है, सौराष्ट्र के एक लेख से खेती की सुविधा के लिये बांध बांधे जाने का पता चलता है, आदि आदि।

भारतवर्ष में लिखने पढ़ने की कला का विकास बहुत प्राचीन काल में ही हो चुका था। प्रागैतिहासिक काल के प्रमुख नगरों जैसे मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा, लोथल आदि में लिखावटयुक्त मुद्राएं प्राप्त हुई हैं जिनकी लिपि दुर्भाग्यवश अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। ब्राह्मी लिपि में लिखे गये शिलालेख अशोक के पहले के भी मिले हैं। अशोक के समय में इस लिपि में देश के विभिन्न भागों में शिलालेख और स्तंभलेख लिखवाये गये थे। एक दूसरी लिपि जो अशोक के समय से ही पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्रचलित थी, खरोष्ट्री नाम से ज्ञात है। वह लिपि अरबी लिपि के समान दायें से बायें लिखी जाती थी जबकि ब्राह्मी लिपि जो समूचे भारत में उत्तर से दक्षिण तक प्रचलित थी, आधुनिक भारतीय लिपियों के समान बायें से दायें लिखी जाती थी। ब्राह्मी लिपि से ही हमारी वर्तमान भारतीय लिपियों का विकास हुआ जिनमें नागरी सर्व प्रमुख है। नागरी लिपि के विकास का एक नक्शा संग्रहालय की शिलालेख दीर्घा में प्रदर्शित किया गया है।

संग्रहालय के संग्रह का सबसे प्राचीन उत्कीर्ण लेख एक काष्ठस्तंभ पर उत्कीर्ण है जो बिलासपुर जिले के किरारी नामक ग्राम में वहां के एक तालाब के सूख जाने पर प्राप्त हुआ था। यह काष्ठ लेख सातवाहन राजाओं के समय का जान पड़ता है और २ री शती ईस्वी के लगभग का है। इस खण्डित लेख में अनेक उच्च अधिकारियों के पदनाम पढ़े गये हैं। अन्य उत्कीर्ण लेख या तो पत्थर पर खुदे हैं अथवा ताम्रपत्रों पर। वे महाकौशल के विभिन्न राजवंशों से संबंधित हैं, जिनमें शरभपुरीय, पाण्डव तथा कलचुरि वंश सम्मिलित हैं। शिलालेखों में मंदिर, मठ, सरोवर, कुये आदि के निर्माण कराने का उल्लेख मिलता है। ताम्रपत्रलेखों में गांवों के अग्रहार दान का विवरण है। इन दानपत्रों में से कुछ के साथ दानदाता राजा की मुद्राएं भी संलग्न हैं।

हस्तलिखित पोथियां

संग्रहालय में संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और अपभ्रंश भाषा के हस्तलिखित ग्रन्थों का छोटा सा संग्रह है और उड़िया भाषा की एक पोथी ताड़पत्रों पर लिखी हुई है। संस्कृत ग्रन्थों में नामाख्यानीयवृत्ति की संवत् १६८४ की प्रति, सिंदूरप्रकरस्तोत्र की संवत १८४२ की प्रति और श्रीमद्भागवत (श्रीधरी टीका) की लगभग ११०० पृष्ठ की विशाल पोथी है जिसे कारीतलाई के एक पंडित ने संवत १९०९ में लिखना प्रारंभ कर के संवत १९२३ में अर्थात् १६ वर्षों में पूरा किया था। श्रीधरी टीका की एक दूसरी प्रति भी है जिसे संवत १९२६ में काशी के विद्याप्रकाश यंत्रालय ने लकड़ी के पाटों से मुद्रित कर प्रकाशित किया था। प्राकृत ग्रन्थों में से सटीक द्रव्यसंग्रह की संवत १६१७ की प्रति महत्वपूर्ण है। अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों में संवत् १५५० में लिखी गई जम्बूस्वामिपंचभवचरित्र की प्रति के अलावा नलदमयन्तीरासो, विक्रमादित्यकथा आदि रासो ग्रन्थ भी हैं। हिन्दी ग्रन्थों में ब्रजभाषा में लिखी कल्याणमंदिर स्तोत्र की टीका है जिसे संवत १७३७ में अक्षयराज श्रीमाल ने लिखा था। उसी प्रकार वाचक कृष्ण रचित उपदेश बावनी की संवत १७०० की प्रति तथा अन्य ग्रन्थ हैं जिनमें सुंदरविलास, ज्ञानसमुद्र आदि दादूपंथी ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं।

बारह फुटकर वस्तुएं

(चित्रफलक उन्नीस से इक्कीस)

प्राचीन लोकजीवन और प्राचीन उद्योग धंधों पर प्रकाश डालन वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को पुरातत्त्व दीर्घा में प्रदर्शित किया गया है जिनमें कुम्हार, सुनार और मछुओं के उपयोग में आनेवाले तरह तरह के उपकरण और औजार भी हैं। सुनारी के काम के लोहे के औजार जैसे हथौड़ी, तिपाई, संड़सी, चिमटी, कैंची, फुंकनी आदि ८ वीं से लेकर १२ वीं शताब्दी तक के हैं। रसोई के काम आने वाली वस्तुएं जैसे तवा, कढ़ाही, झारी, चमचा, परचुल, चाकू, संडसी, हंसिया आदि में से कुछ तो ८ वीं शती के हैं और कुछ ११ वीं व १२ वीं शताब्दी के। ये सभी सिरपुर की खुदाई में प्राप्त किये गये थे। लोहे के ताले और लोहे के ही तराजू जो सिरपुर की खुदाई में प्राप्त हुये थे, भी दीर्घा में प्रदर्शित किये गये हैं। इन में से नरजी नाम का तराजू ध्यान देने योग्य है। वह खुदाई में उन स्तरों में प्राप्त हुआ था जिन का समय ५ वीं शताब्दी से लेकर ७ वीं-८ वीं शताब्दी बताया जाता है। नरजी एक पलवे का तराजू होता है जिसकी डंडी पर विभिन्न तौलों के चिह्न बने रहते हैं। यह संस्कृत शब्द नाराच का अपभ्रंश जान पड़ता है। नरजी का उपयोग छत्तीसगढ़ में आज भी होता है।

बारहवीं शती के लगभग निर्मित पत्थर की दैनिक उपयोग की वस्तुएं, जैसे चक्की ऊखल, सिल-लोढ़ा आदि भी सिरपुर से प्राप्त कर के दीर्घा में प्रदर्शित किये गये हैं। उसी प्रकार १९ वीं शती के शस्त्रास्त्र जैसे ढाल, तलवार, बरछी, खांडा, फरसी आदि भी प्रदर्शित हैं। आठवीं शती से लेकर बारहवीं शती ईस्वी की कांच की नीली-हरी चूड़ियों के अलावा चांदी का एक झुमका तथा कांसे और तांबे की अंगूठियां भी देखने योग्य हैं। पसेवा और सिरपुर की खुदाई में प्राप्त कुछ मनके भी उपरोक्त वस्तुओं के साथ रखे गये हैं। सिरपुर के मनके कांच (पीला रंग), अकीक पत्थर और तांबे के हैं जिनका समय लगभग आठवीं शती ईस्वी है।

नकशे और छायाचित्र

ऊपर दर्शायी गई पुरातत्त्वसामग्री के साथ ही विभिन्न छायाचित्रों और नकशों को लगाकर विषय को सुगम बनाने का प्रयत्न किया गया है। महाकौशल और विशेषकर छत्तीसगढ़ के सुप्रसिद्ध मंदिरों और मूर्तियों के छायाचित्रों के अलावा भुवनेश्वर, कोणार्क, खजुराहो, आदि स्थानों के सुख्यात मंदिरों के छायाचित्र दीर्घा में प्रदर्शित हैं। छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के कतिपय मंदिरों के रंगीन चित्र सजाये गये हैं, उसी प्रकार छत्तीसगढ़ के पुरातत्त्वीय महत्व के स्थानों को दर्शाने वाला एक नकशा भी दीर्घा में प्रदर्शित है। (चित्रफलक दो) कलचुरि कालीन आभूषणों की झांकी प्रस्तुत करने वाले चार्ट विशेष रूप से दृष्टव्य हैं। (चित्रफलक बाईस-क, ख)

सहायक ग्रन्थ

ब्राउनः	कैटलाग आफ प्रिहिस्टारिक एंटिक्विटीज इन इंडियन म्यूजियम
बी० बी० लालः	आर्कलाजी इन इंडिया
कनिंघमः	आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स
हीरालालः	लिस्ट आफ इंस्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार मध्यप्रदेश का इतिहास
वी० वी० मिराशीः	कार्पस इंस्क्रिप्शनं इंडिकेरम् जिल्द ४ कलचुरि नृपति आणि त्यांचा काल संशोधन मुक्तावली
एम० जी० दीक्षितः	त्रिपुरी १९५२ मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व की रूपरेखा
बालचन्द्र जैनः	इन्वेण्टरी आफ होर्ड्स आफ क्वाइन्स एण्ड सील्स फ्राम मध्यप्रदेश

मजुमदार और पुसलकरः हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ इंडियन पीपुल

शुक्ल अभिनदन ग्रन्थ; इतिहास खण्ड

जिला गजेटियर

एपिग्राफिआ इंडिका

जनरल आफ इंडियन म्यूजियम्स

जनरल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इंडिया

रायपुर संग्रहालय द्वारा प्रकाशित सूचीपत्र

चित्रफलक तीन

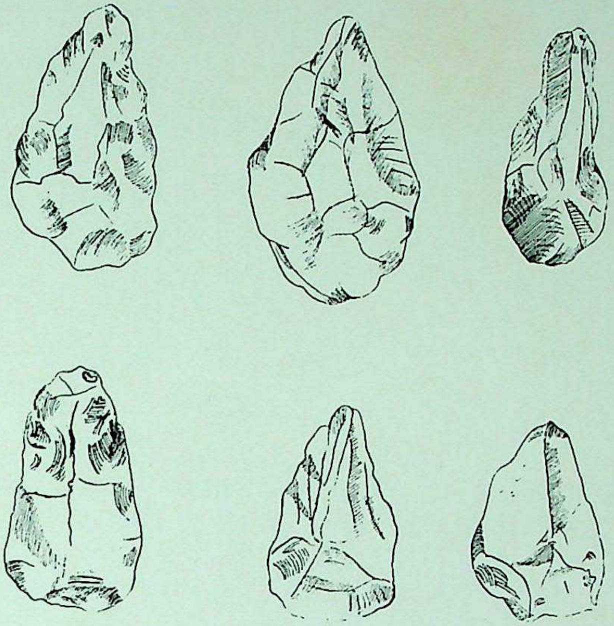

(क) पाषाणयुगीन औजार; अन्सर नदी, जिला मन्दसौर

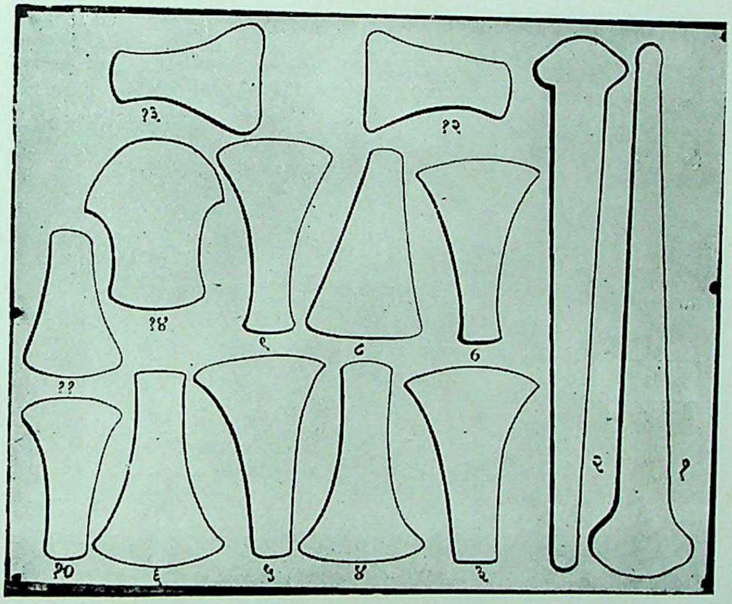

(ख) ताम्रयुगीन औजार; गुंगेरिया, जिला बालाघाट

चित्रफलक चार

(क) मंजुश्री; ८वीं–९वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

(ख) मंजुश्री; ८वीं–९वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

(क) पार्श्वनाथ; ८वीं ९वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

(ख) महावीर; १०वीं ११वीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

चित्रफलक छह

(क) अम्बिका : १०वीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

(ख) शिव; १०वीं ११वीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

चित्रफलक सात

(क) गोविन्द; १०वीं शती ईस्वी;
कारीतलाई, जिला जबलपुर

(ख) नृसिंह; १०वीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

(क) ब्रह्मा; ११वीं शती ईस्वी; कारीतलाई, जिला जबलपुर

(ख उमामहेश्वर; १२वीं शती ईस्वी; रतनपुर, जिला बिलासपुर

चित्रफलक नौ

(क) अवलोकितेश्वर और तारा के साथ बुद्ध; ९वीं शती ईस्वी;
सिरपुर, जिला रायपुर

(ख) बुद्ध; ११वीं शती ईस्वी; सिरपुर,
जिला रायपुर

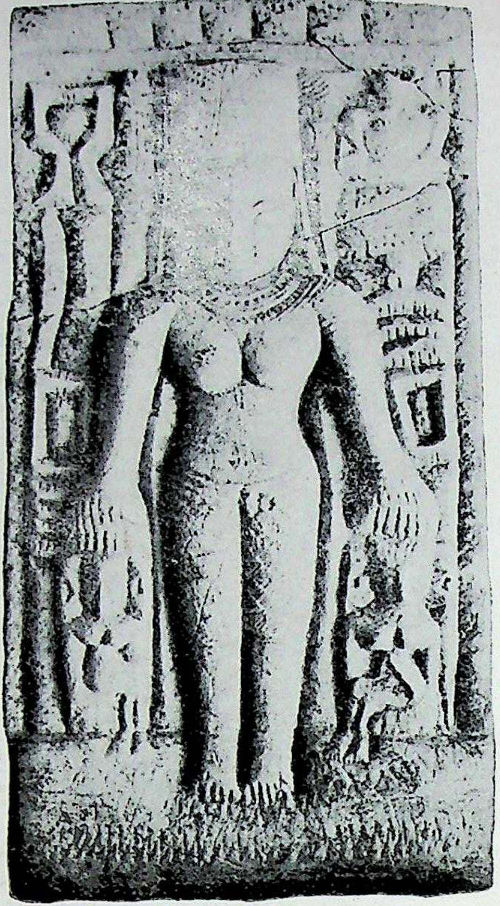

(क) पार्वती; ११वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

(ख) गोंड सरदार; १६वीं–१७वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

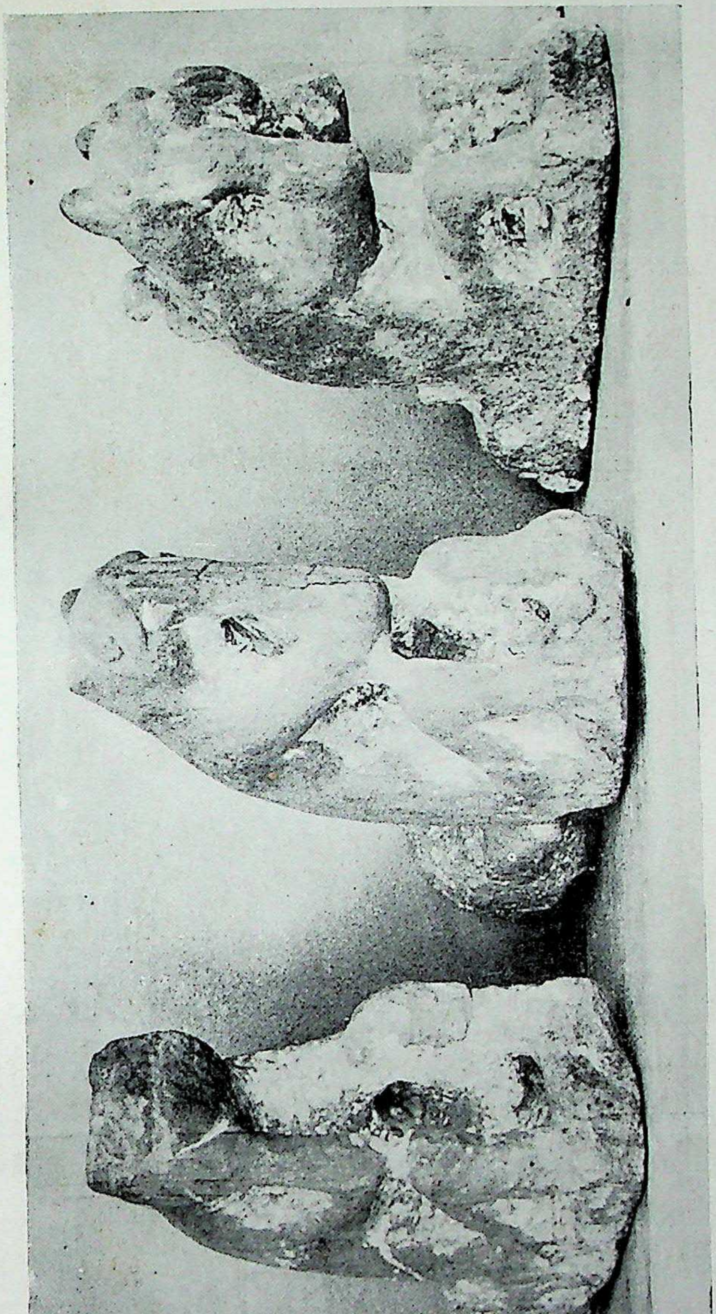

तीन बंदर : १६वीं १७वीं शती ईस्वी : राजनांदगांव, जिला दुर्ग

चित्रफलक बारह

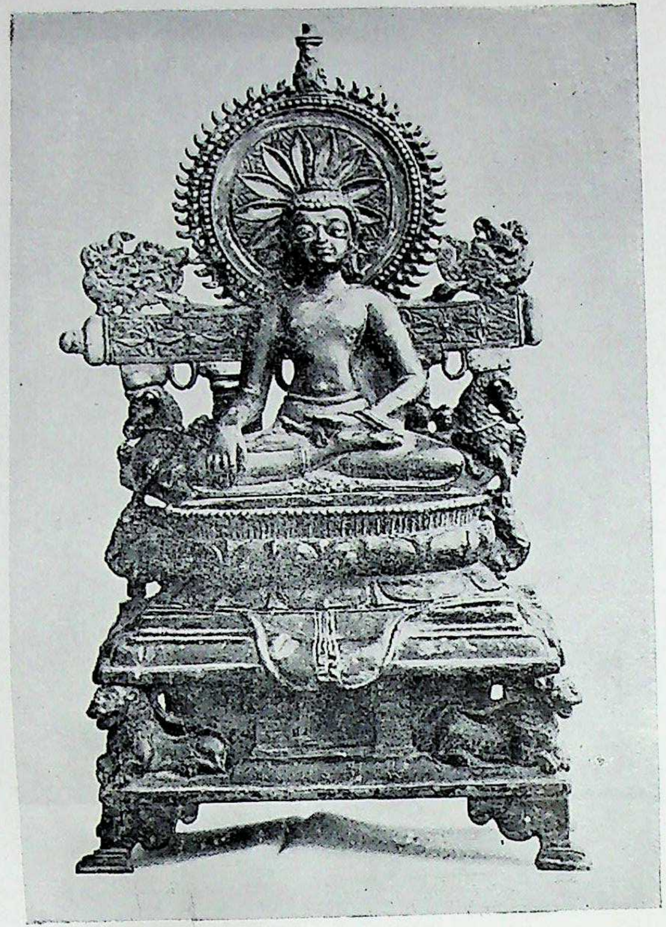

(क) भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध; ८वीं ९वीं शती ईस्वी; सिरपुर जिला रायपुर

(ख) वज्रपाणि; ८वीं ९वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

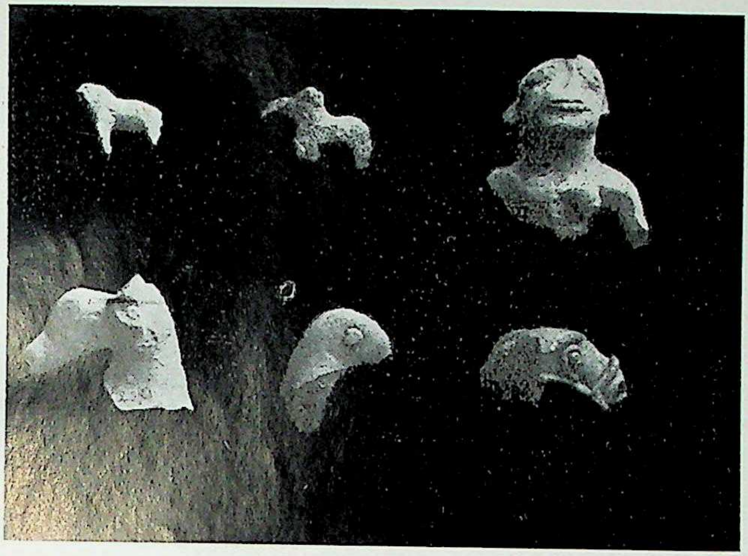

(क) मृण्मूर्तियां; १२वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

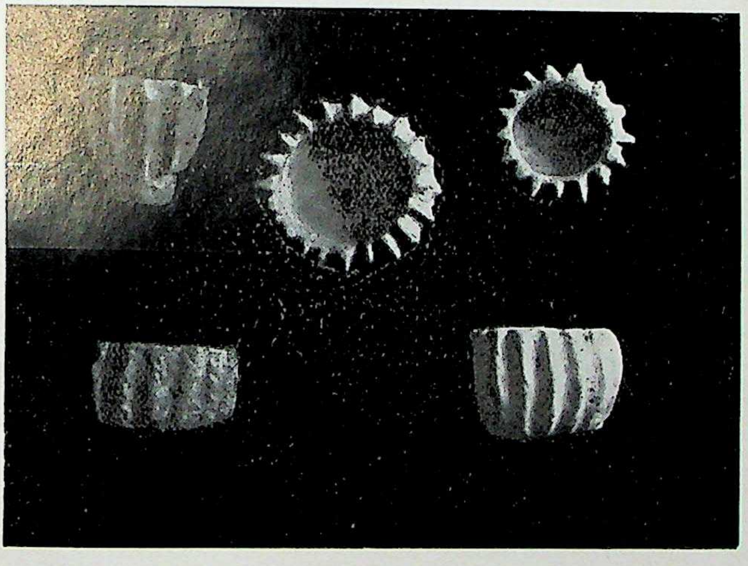

(ख) मिट्टी के धूपदान; १२वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

चित्रफलक चौदह

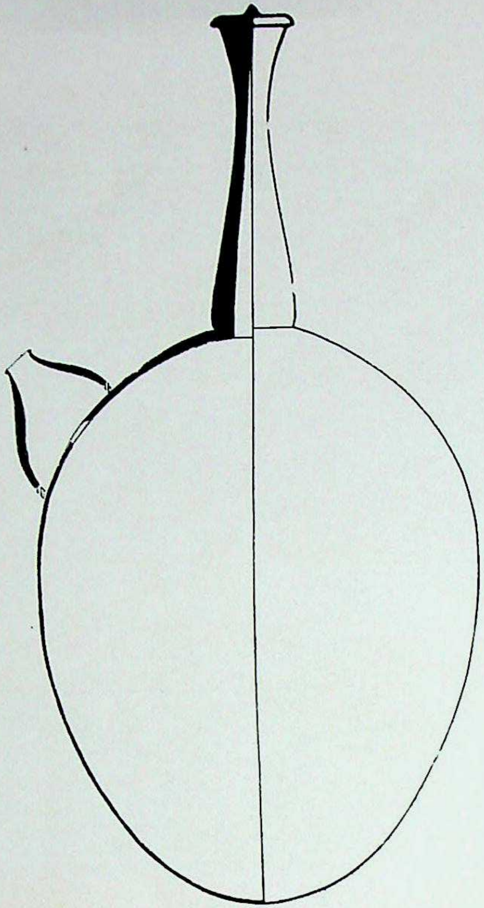

(क) मिट्टी की टोंटीदार सुराही; ५वीं शती ईस्वी; पसेवा, जिला मन्दसौर

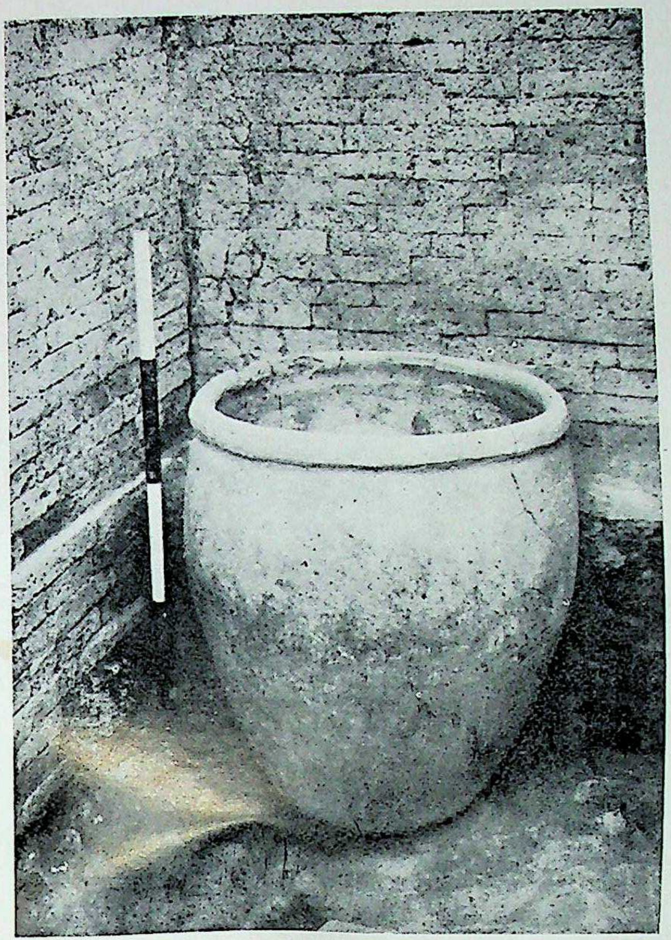

(ख) मिट्टी की कोठी; ११वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

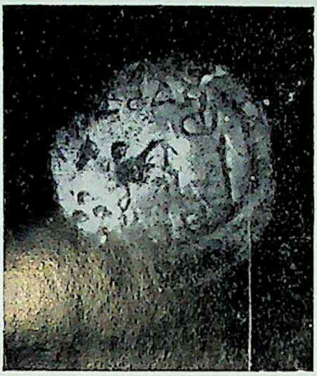

(क) राजा धनदेव की मिट्टी की मुद्रा
१ली शती ईस्वी पूर्व; राजघाट ?
वाराणसी

(ख) द्वादशभुज अवलोकितेश्वर की मिट्टी की मुद्रा:
८वीं शती ईस्वी: सिरपुर, जिला रायपुर

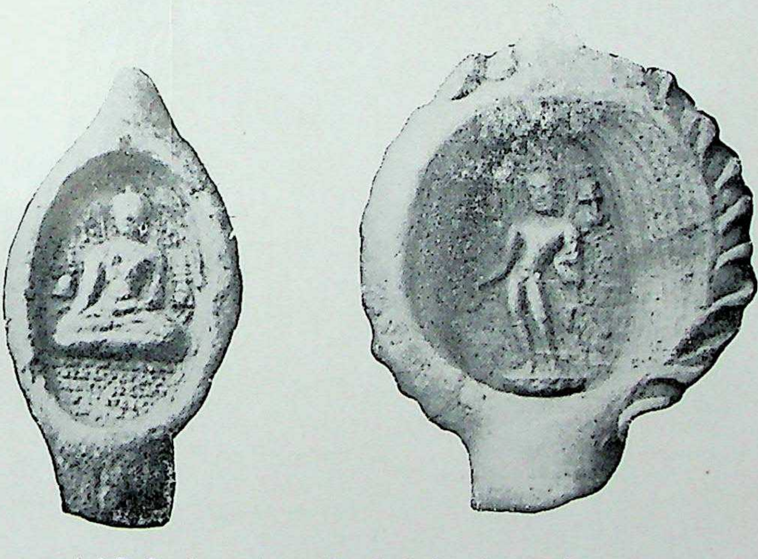

(ग) मिट्टी की मुद्राएं; ८वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

चित्रफलक सोलह

महाकौशल में मिले आहत सिक्के

आहत सिक्के भारतवर्ष के प्राचीनतम सिक्के हैं। इनका चलन आज से २६०० वर्ष पूर्व से ही होने लगा था। इनका कोई एक आकार नहीं होता। ये गोल, चौकोर तथा अन्य आकार के मिलते हैं। कोई मोटे होते हैं कोई पतले पर वजन में एक से होते हैं। कीमत और वजन के अनुसार ये सिक्के मुख्यतः दो प्रकार के थे (१) शतमान और (२) कार्षापण। शतमान का वजन १०० रत्ती। शतमान माला में अर्धशतमान, पादशतमान और पादार्धशतमान सिक्के भी होते थे जो शतमान के क्रमशः आधे, चौथाई और आठवें भाग थे। कार्षापण माला में भी उसी प्रकार अर्धकार्षापण, पादकार्षापण आदि सिक्के होते थे। इनके अलावा चतुर्माषक, त्रिमाषक, द्विमाषक, एकमाषक और अर्धमाषक सिक्कों के उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलते हैं। आहत सिक्कों पर आहत या "पंच" करके चिन्ह बना दिये जाते थे। यहां जिन सिक्कों के चिन्ह दर्शाये जा रहे हैं वे सिक्के महाकौशल क्षेत्र में प्राप्त हुये और सभी चांदी के हैं।

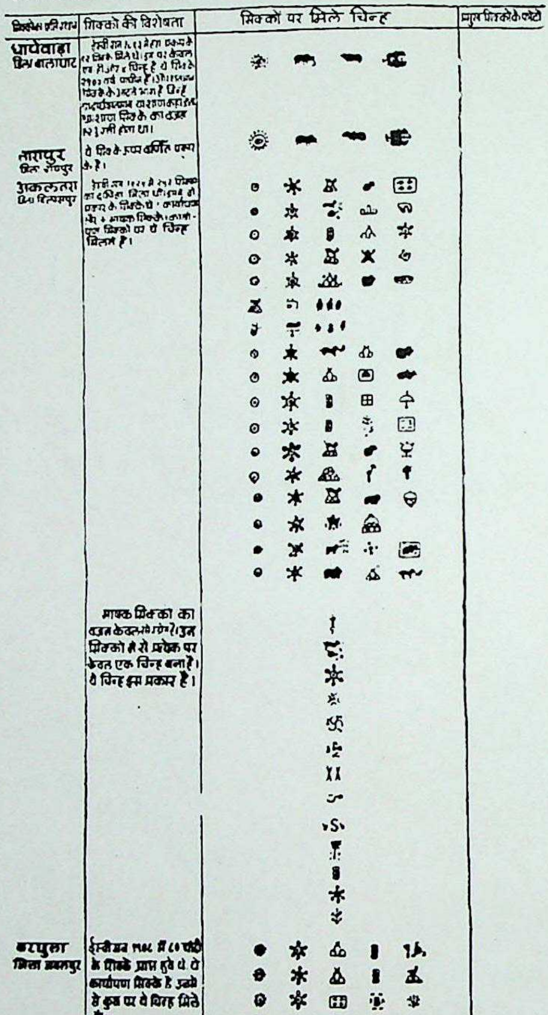

महाकौशल में मिले आहत सिक्कों पर पाये जाने वाले चिह्नों का नकशा; म० घा० स्मा० संग्रहालय, रायपुर में प्रदर्शित

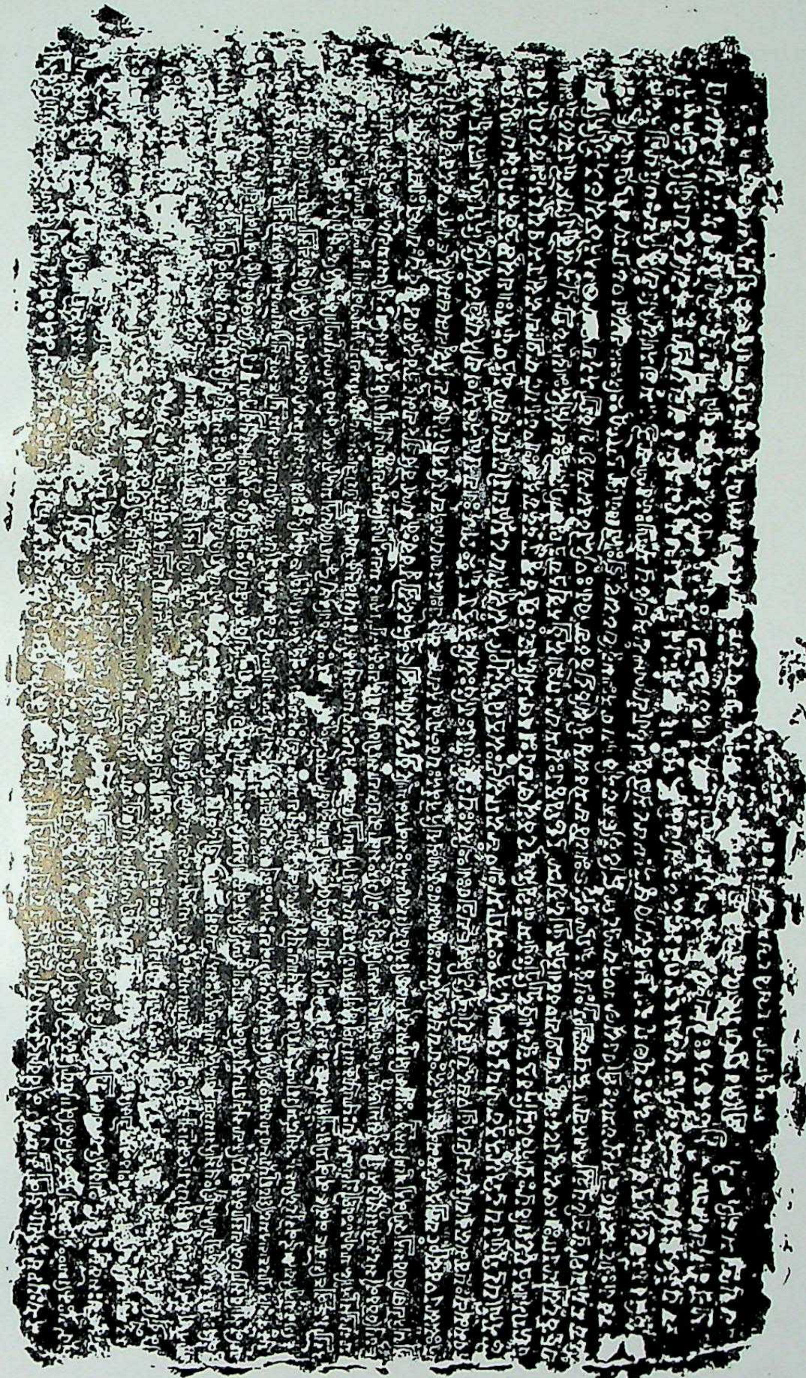

महाशिवगुप्त बालार्जुन का शिलालेख: 7वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

चित्रफलक बीस

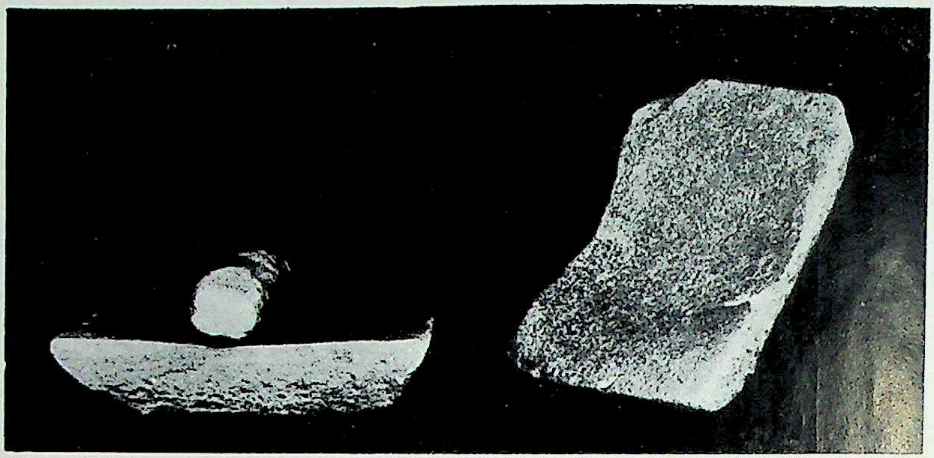

(क) सिल–बट्टा; ११वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

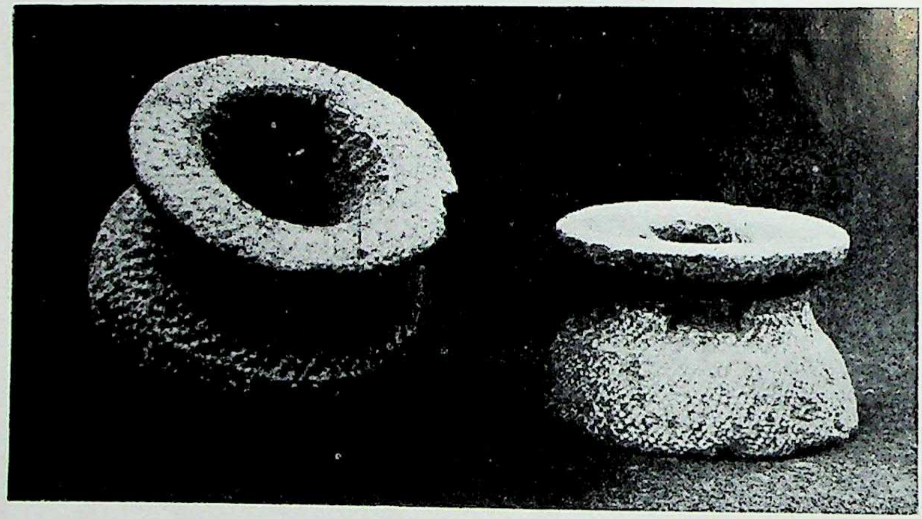

(ख) चक्की; ११वीं शती ईस्वी; सिरपुर, जिला रायपुर

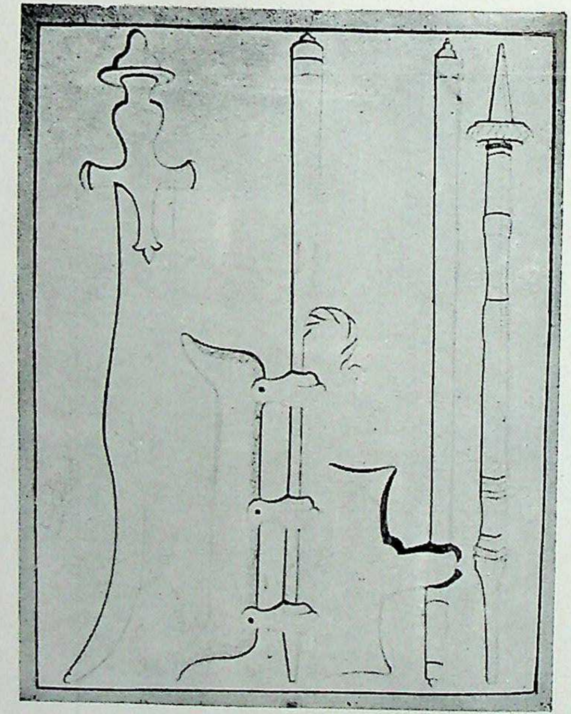

(क) संग्रहालय में प्रदर्शित शस्त्रास्त्र; १८वीं १९वीं शती ईस्वी: छत्तीसगढ़

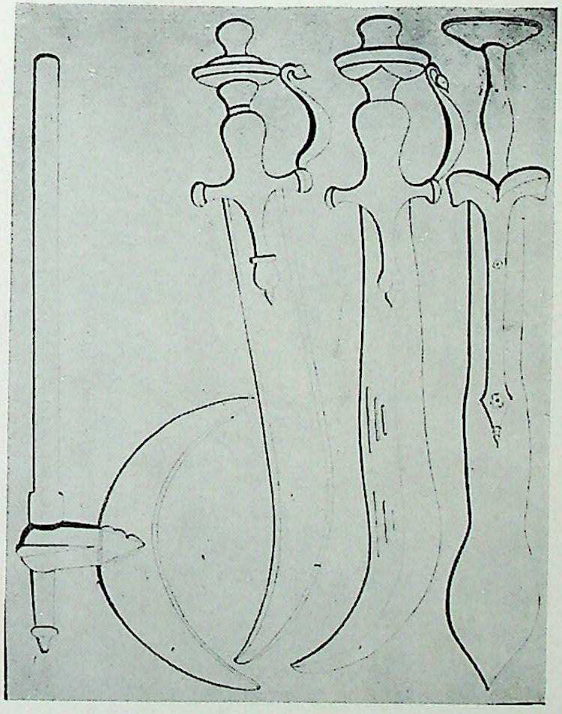

(ख) संग्रहालय में प्रदर्शित शस्त्रास्त्र: १८वीं १९वीं शती ईस्वी: छत्तीसगढ़

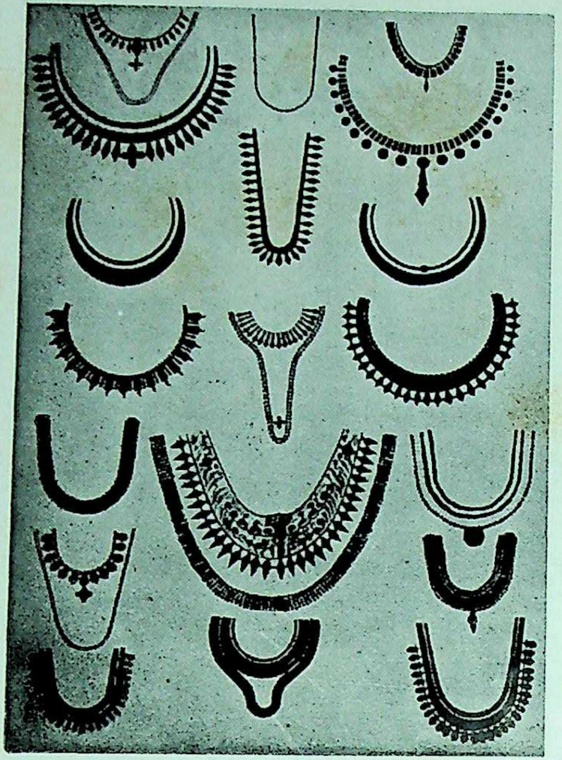

(क) संग्रहालय में प्रदर्शित कलचुरिकालीन प्रतिमाओं पर पाये जाने वाले आभूषण (पुरुषों के)

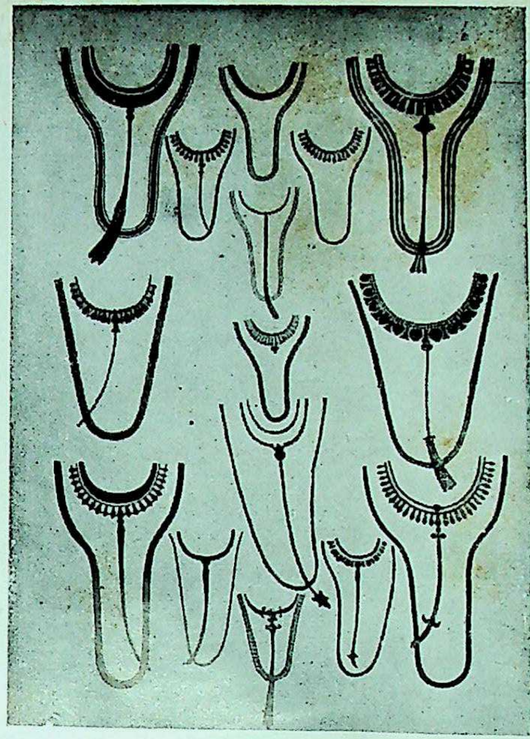

(ख) संग्रहालय में प्रदर्शित कलचुरिकालीन प्रतिमाओं पर पाये जाने वाले आभूषण (स्त्रियों के)

महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर

के

प्रकाशन

१. महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय रायपुर में सुरक्षित उत्कीर्ण लेखों की विवरणात्मिका सूची

२. लिस्ट आफ क्वाइन्स डिपाजिटेड इन दि एम० जी० एम० म्यूजियम रायपुर (अंग्रेजी)

३. महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय (उद्भव, इतिहास और प्रवृत्तियां)

४. मानवशास्त्रीय उपविभाग प्रदर्शिका

५. प्रकृति इतिहास उपविभाग प्रदर्शिका

६. पुरातत्त्व उपविभाग प्रदर्शिका

७. पुरातत्त्व उपविभाग का सूचीपत्र भाग २, पाषाण प्रतिमाएं

८. पुरातत्त्व उपविभाग का सूचीपत्र भाग ३, धातु प्रतिमाएं

९. पिक्चर पोस्ट कार्ड (विभिन्न सेट)